प्रकाशक,

उदयलाल काशलीवाल।

मालिक--जैन साहित्य-प्रसारक कार्यालय;

हीराबाग, गिरगाँव—बम्बई।

विषय-सूची ।

विषय ।	पृष्ठ ।
मंगल	१
८ मूलगुन	६
मूलगुन-धारन, अभक्ष-त्याग, जल छाननेकी विधि, रजस्वलाकी क्रिया, सप्तव्यसन-त्याग, किन किन जातिके लोगोंसे तथा किन किन वस्तुओंका व्यापार न करना चाहिए ! सम्यक्त्व, उसके आठ अंग और पच्चीस मल-दोष ।	
१२ व्रत	२८
पाँच अनुव्रत—अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत, परिग्रह-परिमाणाणुव्रत । तीन गुनव्रत—दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थदंडव्रत । चार शिक्षाव्रत—भोगोपभोगपरिमाणव्रत, सामायिक, प्रोषधोपवास, वैयावृत्य ।	
१२ तप	१२२
६ बाह्य तप—अनशन, अवमोदर्य, व्रतपरिसंख्या, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, कायक्लेश । ६ अभ्यन्तर तप—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग, ध्यान ।	
१ सम्यक्त्व-वर्णन	१४१
११ प्रतिमा-वर्णन	१५७
४ दान-वर्णन	१६७
१ जलगालन-विधि	१६८
१ रात्रिभोजन-त्याग-वर्णन	१७०
३ रत्नत्रय-वर्णन	१७३

नमः श्रीमते गणधरदेवाय।

स्वर्गीय पण्डित दौलतरामजी विरचित

क्रियाकोष।

मंगल।

दोहा।

प्रणमि जिनंद मुनिंदकौं, नमि जिनवर मुखवानि।
क्रियाकोष-भाषा कहूं, जिन आगम परवानि ॥ १ ॥
मोक्ष न आतमज्ञान विन, क्रिया ज्ञान विन नाहिं।
ज्ञान विवेक विना नहीं, गुन विवेकके माहिं ॥ २ ॥
नहिं विवेक जिनमत विना, जिनमत जिन विन नाहिं।
मोक्षमूल निर्मल महा, जिनवर त्रिभुवन माहिं ॥ ३ ॥
तातैं जिनकौं वंदना, हमरी वारंवार।
जिनतैं आपा पाइये, तीन भुवनमैं सार ॥ ४ ॥
द्वीप अढ़ाई के विषैं, आरजछेत्र अनूप।
सौ ऊपर सत्तरि सबै, कर्मभूमि शुभरूप ॥ ५ ॥
जिनमैं उपजैं जिनवरा, धर्मविधान निरूप।
कबहूं इक इक क्षेत्रमैं, इक इक है जिनभूप ॥ ६ ॥
सब सत्तरि सौ ऊपरैं, उत्कृष्टे भुवनेश।
तिनमैं महाविदेहमैं,-अस्सी हूए अशेष ॥ ७ ॥
भरतैरावत क्षेत्र दस, तिनमैं दस जिनराय।
९ दस अर वे सबैं, सौ सत्तरि सुखदाय ॥ ८ ॥
घाटि हैं सौ जिन वीसितैं, वीस न काहू काल।
पंच विदेह विषैं सदा, केवलरूप विशाल ॥ ९ ॥
चलैं धर्म इन सासना, यति श्रावक अनगार।
हमैं पार तिमिरादिका, करनै सूरज अनूप ॥ १० ॥

निर्वाणादि भये प्रभु,— निर्वाणी चौवीस।
ते अतीत जिन जानिये, नमों नाय निज शीश ॥ २६ ॥
जिन भाष्यौ द्वै विधि धरम, परमधामको मूल।
यति-श्रावकके भेद करि, इक सूखम इक थूल ॥ २७ ॥
बहुरि वर्तमाना जिना, रिषभादिक चौवीस।
नमों तिन्हें निज भाव करि, जिनके राग न रीस ॥ २८ ॥
तिनहू सोही भाषियौ, द्वै विधि धर्म विसाल।
महाव्रत अणुव्रतमय, जीवदया प्रतिपाल ॥ २९ ॥
बहुरि अनागत कालमें, ह्वैगे तीरथनाथ।
महापद्म प्रमुख प्रभु, चौवीसा बड़हाथ ॥ ३० ॥
तातें सोही भासि है, जे ज्योत्स्नादि प्रबंध।
सबकों मेरी वंदना, सबको एक निबंध ॥ ३१ ॥
चौवीसी तीनूं नमूं, नमों तीस चौवीस।
श्री सीमंधर आदि[1] प्रभु, नमन करों फुनि बीस ॥ ३२ ॥
पंद्रा कर्मधरा सबै, तिनमें जे जिनराय।
अर सामान्य जु केवली, वर्तें निर्मल काय ॥ ३३ ॥
तिन सबकों परनाम[2] करि, प्रणमों सिद्ध अनंत।
आचारिज उपाध्यायकों, बिनऊं साधु महंत ॥ ३४ ॥
तीन कालके जिनवरा, तीन कालके सिद्ध।
तीन कालके मुनिवरा, वंदों लोक-प्रसिद्ध ॥ ३५ ॥
पंच परमपद-पद प्रणमि, वंदों केवलवानि।
वंदों तत्त्वारथ महा, जैनधर्म गुणखानि ॥ ३६ ॥
सिद्धचक्रकूं वंदिकै, सिद्धजंत्रकूं वंदि।
नमि सिद्धान्त-निबंधकों, समयसार अभिनंदि ॥ ३७ ॥
वंदि समाधि सुतंत्रकूं, नमि समभाव-सरूप।
नमोकारकूं करि प्रणति, भाषों व्रत्त अनूप ॥ ३८ ॥
चउ अनुयोगहि वंदिकै, चउ सरणा ले सुद्ध।
चउ उत्तम मंगल प्रणमि, कहूं क्रिया अविरुद्ध ॥ ३९ ॥
देव-धर्म-गुरु प्रणति करि, स्यादवाद अवलोकि।
क्रियाकोष-भाषा कहूं, कुंदकुंद मुनि ढोकि ॥ ४० ॥

---

१ आदि लेकर। २ नमस्कार कर।

तातैं मुनिमत अति प्रबल, वार वार श्रुति जोग ।
धन्य धन्य मुनिराज ते, तजैं समस्त अजोग ॥ ५६ ॥
पर परणति जे परिहरैं, रमैं ध्यानमैं धीर ।
ते हमकूं निज दास करि, हरौ महा भव-पीर ॥ ५७ ॥
मुनिकी क्रिया त्रिलोकितैं, हमपै वरनि न जाय ।
लौकिक क्रिया गृहस्थकी, वरनूं मुनि-गुण ध्याय ॥ ५८ ॥
यतिव्रत ज्ञान विना नहीं, श्रावक ज्ञान विना न ।
बुद्धिवंत नर ज्ञान विन, खोवैं योंहि दिनानें ॥ ५९ ॥
मोक्षमारगी मुनिवरा, तिनकी सेव करेय ।
सो श्रावक धनि धन्य है, जिनमारग चित देय ॥ ६० ॥
जिन मंदिर जो शुभ करै, अरचै जिनवर देव ।
जिनपूजा नितप्रति करै, धरै साधुकी सेव ॥ ६१ ॥
करै प्रतिष्ठा परम जो, जात्रा करै सुजान ।
जिन सासनके ग्रंथ शुभ, लिखवावै मतिवान ॥ ६२ ॥
चउविधि संघतणी सदा, सेवा धारै धीर ।
परउपगारी सर्वको, पीड़ा हरै जु वीर ॥ ६३ ॥
अपनी शक्ति प्रमाण जो, धारै तप अर दान ।
जीव मात्रको मित्र जो, शीलवंत गुण धाम ॥ ६४ ॥
भाव शुद्ध जाके सदा, नहिं प्रपंचको लेस ।
परधन पाहन सम गिनैं, तृष्णा तजी विशेस ॥ ६५ ॥
तातैं श्रावक हू प्रबल, ताकी क्रिया अनेक ।
तिनमैं त्रेपन मुख्य हैं, तिनमैं मुख्य विवेक ॥ ६६ ॥
नमस्कार गुरुदेवकों, जे सब रीति कहेय ।
जिनवानी हिरदै धरी, ज्ञानवंत व्रत सेय ॥ ६७ ॥
क्रियाकोषकों करि प्रणति, भाषौं विविधाशेष ।
जिनआगम अनुसार शुभ, व्याख्या निरदोष ॥ ६८ ॥
प्रथमहि त्रेपन हैं क्रिया, तिनके बरनौं नाम ।
ज्ञान-दिगम्बरके कहे, भविकनकूं विश्राम ॥ ६९ ॥

[illegible]

फूली आयौ धान अजान, फूल्यौं साग तजौं मतिवान।
कंद अथाणा माखन त्याग, हाट-मिठाई तजें बड़भाग॥ ८१॥
निसिभोजन अणछाण्यूं नीर, आमिष तुल्य गिनें वरवीर।
निसि पीस्यौ निसि रांध्यौ होय, हाड़-चामको परस्यौ जोय॥ ८२॥
मांस अहारीके घर तनों, सो सब मांस समानहिं गिनों।
विकलत्रय अर तिरं नर जेह, तिनको मांस रुधिरमय जेह॥ ८३॥
तजौं सबै आमिष अघखानि, या सम पाप न और प्रमानि।
त्यागौं सहत जु मदिरा समा, मधु दोऊको नाम निरभ्रमा॥ ८४॥
अर जिन वस्तुनिमैं मधुदोष, सो सब तजहु पापगण-पोष।
काकिव और मुरब्बा आदि, इनहिं खाहिं तिनको व्रत वादि॥ ८५॥
मधु मदिरा पेल जे नर गहैं, ते शुभगतितैं दूरहिं रहैं।
नर्क-निगोद माहिं दुख सहैं, अतुल अपार त्रासना लहैं॥ ८६॥
तातैं तीन मकार धिकार, मद्य मांस मधु पाप अपार।
ये तीनों औ पंच कुफला, तीन पांच ए आठों मला॥ ८७॥
इन आठोंमें अगणित त्रसा, उपजें मरण करें परवसा।
जीव अनंता बहुत निगोद, तातैं कृत-कारित-अनुमोद–॥ ८८॥
इनको त्याग किये वसु मूल,—गुणा होंहिं अघतैं प्रतिकूल।
पांच उदम्बर तीन मकार, इनसैं पाप न और प्रकार॥ ८९॥
वार वार इनकों धिक्कार, जो त्यागै सो धन्य विचार।
इन आठनसैं चौदा और, भखैं सु पावैं अति दुख-ठौर॥ ९०॥
बहुत अभक्षनमैं बाईस, मुख्य कहे त्यागैं व्रतईस।
ओला नाम गड़ा जु बखानि, जीवरासि भरिया दुखखानि॥ ९१॥
अणछाण्यां जलके संधाण, दोष करै जैसें संधाण।
भखें पाप लागैं अधिकाय, तातैं त्याग करौ सुखदाय॥ ९२॥
घोलबड़ामें दूषण बड़ा, खाहिं तिके जाणें अति जड़ा।
दही मैहीमें विदल जु वस्त, खाये सुकृत जाय समस्त॥ ९३॥
तुरत पचेन्द्री उपजे तहां, विदल दही मुखमें ले जहां।
अन्न मसूर मूंग चणकादि, मोठ उड़द मटर तुरादि॥ ९४॥
अर मेवा पिस्ता जु बिदाम, चारोली आदिक अति नाम।
जिन वस्तुनिकी है द्वै दाल, सो सो सब दधिभेला टालि॥ ९५॥

---

१ निर्दय। २ मांस। ३ दुःख। ४ छाछ-मठा। ५ तुल्य। ६ दहीके साथ।

ताकी मर्यादा दिन तीस, शीतकालमें भाषी ईश ।
ग्रीषम पंद्रा वर्षा आठ, यह धारौ जिनवाणीपाठ ॥ १११ ॥
अर जो अन्नतणों पकवान, जलको लेश जु माहै जान ।
आठ पहर मरजादा जास, भाषै श्रीगुरु धर्मप्रकाश ॥ ११२ ॥
जल-वरजित जो चूनहिं तनों, घृत-मीठो मिलिकै जो बनों ।
ताकी चून समानहिं जानि, मरजादा जिन आज्ञा मानि ॥ ११३ ॥
भुजिया बड़ा कचौरी पुवा, मालपुवा घृत-तेलहिं हुवा ।
इत्यादिक है अवरहु जेह, लुचई सीरा पूरी एह ॥ ११४ ॥
ते सब गिनौ रसोई समा, यह उपदेश कहैं पति रमा ।
दारि भात कढ़ही तरकारि, खिचड़ी आदि समस्त विचारि ॥ ११५ ॥
दोय पहर इनकी मरजाद, आगें श्रीगुरु कहैं अखाद ।
केई नर संधानक त्यागि, ल्यूंजी खांय सवादहिं लागि ॥ ११६ ॥
केरी नींबू आदि उकालि, नाना विधि सामग्री घालि ।
सरस्यूं केरो तेल तपाय, तामें तलैं सकल समुदाय ॥ ११७ ॥
जिह्वालंपट वहु दिन राख, खांय तिके मतिमंद जु भाख ।
तरकारी सम ल्यूंजी एह, आगें संधाणा समुजेह ॥ ११८ ॥
अणजाण्यूं फल त्यागहु मित्र ! अणछाण्यो जल ज्यों अपवित्र ।
त्यागौ कंदमूल बुधिवंत, कंदमूलमें जीव अनंत ॥ ११९ ॥
गारि न कवहु भखहु गुणवन्त, गारी कवहु न कादउ सन्त ।
दरी गारिमें जीव असंख, निंदैं साधु अशंक अकंख ॥ १२० ॥
जा खावे छूटें निज प्राण, सो विषजाति अभख प्रवान ।
आफू और महोरा आदि, तजौ सकल सुनि सूत्र अनादि ॥ १२१ ॥
काचौ माखण अति हि सदोष, भखिया करै सर्व शुभ सोख ।
पहले आमिष दूषण माहिं, फुनि फुनि निर्ग्रौ संसै नाहिं ॥ १२२ ॥
फल अति तुच्छ खाहु मति वीर, निंदैं महावीर जगधीर ।
पालौ राति जमावै कोय, ताहि भखत दुरगति फल होय ॥ १२३ ॥
निज सवाद तजि है विपरीत, सो रसचलितैं तजौ भवभीत ।
आगें मदिरा दूषण मंहे, निर्ग्रौ ताहि सुबुध नहिं गहै ॥ १२४ ॥
ए बाईस अभख तजि सखा, जो चाहौ अनुभौ-रस चखा ।
अवर अनेक दोषके भरे, तजौ अभख भव्यानि परिहरे ॥ १२५ ॥

छाँड़ै तौ अति तपा, नीरस तप धरि श्रीजिन जपा ।
…व लॉन त्रितिनिकौं लेन, कर्दम लॉन सबै तजिदिन ॥ १४१ ॥
…निधवहू त्यागै भया, महा तपस्वी श्रुतमें लया ।
तुम गोरसकी विधि सुनौं, जिनवरकी आज्ञा उर मुणौं ॥ १४२ ॥
…न जब महिषी अर गाय, तबतैं इह मरजाद गहाय ।
…ताँ दूध न राखै सुधी, द्वै घटिका राखै नाँ कुधी ॥ १४३ ॥
…नौं दूध न लेवौं वीर, अणछाण्यूं पय तजिवौ धीर ।
…नर एक महूरत बसा, उपजै जीव असंखित त्रसा ॥ १४४ ॥
…ताको पय है तैसे जीव, प्रगटै इह भाषै जगपीव ।
…त्रिंद्री सन्मूर्छन माणि, भैया तू जिनवचन प्रवाणि ॥ १४५ ॥
…इह तौ दूध तणी विधि कही, अब सुनि दही महीकी सही ।
जामण दीयाँ है जिह दिणा, ताके दूजा दिन शुभ गिणा ॥ १४६ ॥
पीछे दधि खावौ नहिं जोगि, इह भाषै जिनराज अरोगि ।
दधिकौं मथियाँ पानी डारि, ताकौ नाम जु छाछि विचारि ॥ १४७ ॥
नाही दिवस रहै सो भख, यह जिन आज्ञा है परतख ।
मथता ही जा मांहीं तोय, बहुर्यौ वारि न डार्यौ होय ॥ १४८ ॥
माथिवा पाछे डार्यौ वारि, ताक्यौ सो लेवौ जु विचारि ।
जैसौ खावा जलको काल, तैसौ ही ताको जु सभाल ॥ १४९ ॥
छाण्यूं जल सो खावा रहै, एक महूरत जिनवर कहै ।
आगै त्रसजीवा उपजंत, अणछाण्याको दोष लगंत ॥ १५० ॥
लौंग कषाय मिल्यौ जो नीर, सो प्रासुक भाख्यौ जिन वीर ।
दोय पहर चाली ही नहीं, यह जिन आज्ञा हिरदै धरौ ॥ १५१ ॥
तातौ जल जो भात उकाल, आठ पहर मरजादा काल ।
आगै सनमूर्छन उपजाहिं, पीवत [illegible] मत जाहिं ॥ १५२ ॥

दोहा ।

अब-भखको मूल इह, कोह मिथ्यात जु होय ।
राग दोष कालादिका, ए सर्वद [illegible] जोय ॥ १५३ ॥
अशुभ क्रिया [illegible] करी, [illegible] आव ।
[illegible] अनंत [illegible], [illegible] नाहिं [illegible] ॥ १५४ ॥
इह सब दुख [illegible], [illegible] निगोद [illegible] ।
इह अब-भखको [illegible] है, [illegible] नाहिं [illegible] ॥ १५५ ॥

मृये पशुके चर्मकों, चीरे जो चिडार।
ता चंडालहि परसिकें, छोति गिनें संसार ॥ १७० ॥
तो कैसे पावन भयो, मिल्यो चर्मसों जोहि।
आमिष तुल्य प्रभू कहें, याहि तजो बुध सोहि ॥ १७१ ॥
उपजें जीव अपार सुनि, जिनवानी उर धारि।
जा पशुको है चर्म जो, तैसेही निरधारि ॥ १७२ ॥
सन्मूर्छन उपजें जिया, तातें जल घृत तेल-।
चर्म सपरसे त्यागिये, भाषें साधु अचेल ॥ १७३ ॥
जैसे सूरज कांचके, रूई बीचि धरेय।
प्रगटे अगनि तहां सही, रूई भस्म करेय ॥ १७४ ॥
तैसे रस अर चर्मके, जोगें, जिय उपजंत।
खावेवारेके सकल, धर्मव्रत लुपिजंत ॥ १७५ ॥
जीमत भोजनके विषें, मुवो जिनावर देखि।
तजें नहीं जे असनकों, ते दुरबुद्धि विशेखि ॥ १७६॥
जे गँवारपाठातनी, फली खाँय मतिहीन।
तिनके घट नहिं समुझि है, यह भाषें परवीन ॥ १७७ ॥

रसोई, परंडा और चक्की आदिकी क्रियाओंका वर्णन।

चौपई।

जा घर माहिं रसोई होय, धारे चँदवा उत्तम सोय।
बहुरि परंडा ऊपर ताणि, उखली चाकी आदिक जाणि ॥ १७८ ॥
फटके नाज बीणिये जहां, चून चालिये भय्या तहां।
अर जिह ठोर जीमिये धीर, पुनि सोवेकी ठोहर वीर ॥ १७९ ॥
तथा जहां सामायिक करे, अथवा श्रीजिनपूजा धरे।
इतने थानक चँदवा होय, दीखे श्रावकको घर सोय ॥ १८० ॥
चाकी अर उखली परमाण, ढकणा दीजे परम सुजाण।
श्वान बिलाव न चाटें ताहि, तब श्रावकको धर्म रहाहि ॥ १८१ ॥
मूसल धोय जतनसों धरे, निशि खोटन पीसन नहिं करे।
छाज तराजू अर चालणी, चर्मतणी भविजन टालणी ॥ १८२ ॥
निशिकों पीसे खोटै दलै, जीवदया कबहू नहिं पलै।
चाकी गालै चून रहाय, चींटी आदि लगें ततु आय ॥ १८३

जीवनकूं संताप न देवै, तब आचार तणी विधि लेवै ।
विन जिनधर्मा उत्तम वंसा, देइन लेइसु राछनि संसा ॥ १९८ ॥
श्रावक-कुल-किरिया करि युक्ता, तिनके करको भोजन युक्ता ।
अथवा अपनें करको कीयौ, आरंभी श्रावकने लीयौ ॥ १९९ ॥
अन्यमती अथवा कुलहीना, तिनके करको कबहु न लीना ।
अन्य जाति जो भींटै कोई, तौ भोजन तजवौ है सोई ॥ २०० ॥
नीली हरी तजे जो सारी, तासम और नहीं आचारी ।
जो न सर्वथा छांडी जाई, तौ प्रत्येकफला अलपाई ॥ २०१ ॥
हरी सुकावौ योग्य न भाई, जामें दोष लगे अधिकाई ।
सूके अन्न औषधी लेवा, भाजी सूकी सब तजि देवा ॥ २०२ ॥
पत्र-फूल-कंदादि भखें जे, साधारण फल मूढ़ चखें जे ।
ते नहिं जानों जैनी भाई, जीभलंपटी दुरगति जाई ॥ २०३ ॥
पत्र-फूल-कंदादि सर्व ही, साधारण फल सर्व तजे ही ।
अर तुम सुनहु विवेकी भैय्या, भेले भोजन कबहु न लैया ॥ २०४ ॥
मात तात सुत बांधव मित्रा, भेले भोजन अति अपवित्रा ।
महादोष लागे या माहीं, आमिषको सो संसै नाहीं ॥ २०५ ॥
अपने भोजनके जे पात्रा, काहूकूं नहिं देय सुपात्रा ।
सो भेले जीमें करो कैसे, भाषें श्रीजिन नायक ऐसे ॥ २०६ ॥
माहिं मसाण न भोजन भाई, जब श्रावकको व्रत रहाई ।
अंनिज नीचनके घर माहीं, कबहु रसोई करणी नाहीं ॥ २०७ ॥
मांस त्यागि व्रत जो दिढ़ धारै, नीचनको संसर्ग न कारै ।
उत्तम कुल है परव्रत धारी, तिनहूके भोजन नहिं कारी ॥२०८ ॥
जैनधर्म जिनके घट नाहीं, आनदेव [illegible]जा घर माहीं ।
तिनको छूवौ अथवा परसौ, क[illegible] न त्यावै तिनके घरको ॥ २०९ ॥
कुल-किरिया करि आप समाना, अथवा आप थकी अधिकाना ।
तिनको छूवौ अथवा परसौ, भोजन पावन तिनके घरको ॥ २१० ॥
अर जे त्यागि न जाणैं पाणी, अन्न धान्यकी रीति न जाणी ।
भखाभख भेद नहिं जानैं, कुगुरु कुदेव मिथ्यामत मानैं ॥ २११ ॥
तिनके जैनी रीति [illegible], तिनको छूवौ है [illegible] ।
[illegible] ॥ २१२ ॥

जहां वापरै अन्न रसोई, तातैं न्यारे राखै जोई ।
जेतो चहिये तेतो ल्यावै, आवै, सो वर्तनमें आवै ॥ २२८ ॥
पाकावस्तुरु भोजन भाई, एक भये वाहिर नहिं जाई ।
जल अर अन्न तणों पकवाना, सो भोजन ही सादश जाना ॥ २२९ ॥
असन रसोई बाहर जावै, सो वडवोपा नाम कहावै ।
मौन विना भोजन वरज्या है, मौन सात श्रुत माहिं कह्या है ॥ २३० ॥
भोजन भजन सनान करंता, मैथुन वमन मलादि करंता
मूत्र करंता मौन जु होई, इह आज्ञा धारै बुध सोई ॥ २३१ ॥ ।
अंतराय अर मौन जु सप्ता, पावै श्रावक पाप अलिप्ता ।
अब जलकी किरिया सुनि धर्मी, जे नहिं धारैं तेहि अधर्मी ॥ २३२ ॥
नदी तीर जो होय मसाणा, सो तजि घाट जु निंद्य वखाणा ।
और घाटको पाणी आणों, इह जिन आज्ञा हिरदै जाणों ॥ २३३ ॥
लोक भरन जे निजरथा आवै, तिनके उपरलौ जल ल्यावै ।
सरवर माहिं गांवको पानी, आवै सो सरवर तजि जानी ॥ २३४ ॥
गाँवथकी जो दूरि तलावा, ताको जल ल्यावौ सुभ भावा ।
तजों अपावन निंदक नीरा, अब वापीकी विधि सुनि वीरा ॥ २३५ ॥
जा माहीं न्हावै नरनारी, कपरा धोवहिं दांतनिकारी ।
ता वापीको जल मति आनों, तहां न निर्मलताई जानों ॥ २३६ ॥
कूपतणी विधि सुनहु प्रवीना, जहां भरै पानी कुलहीना ।
तहां जाहि मति भरवा भाई, तबै ऊंचको धर्म रहाई ॥ २३७ ॥
उत्तम नीच यहै मरजादा, यामें है कछुहू न विवादा ।
यवन अंतिजा सबसे हीना, इनको कूप सदा तजिदीना ॥ २३८ ॥
अब तुम बात सुनों इक और, शंका छांडि वखानों और ।
धर्मरहितके पानी घरको, त्यागो वारि अधर्मी नरको ।
विन साधर्मी उत्तम बंसा, पर घरको छांड़ो जल अंसा ॥ २३९ ॥

दोहा ।

जलके भाजन धातुके, जो होवें घर माहिं ।
पूंछ-मांजि नित धोयवा, यामें संसै नाहिं ॥ २४० ॥
अर जे बासण गारके, गागर घट मटकादि ।
ते हि अल्पदिन राखिवौ, इह आज्ञा जु अनादि ॥ २४१ ॥

रात्रि विषें कपरा है नारी, तौ इह बात हियेमें धारी।
पंच दिवसमें सो निसि नाहीं, ता विन पंच दिवस श्रुतमाहीं ॥ २८३ ॥
इह आज्ञा धारौ तजि पापा, तव पावौ आचार निपापा।
अव सुनि गृहपतिके षट कर्मा, जो भाषे जिनवरको धर्मा ॥ २८४ ॥
जिनपूजा अर गुरुकी सेवा, फुनि स्वाध्याय महासुख देवा।
संजम तप अर दान करौ नित, ए षट कर्म धरौ अपने चित ॥ २८५ ॥
इन कर्मनि करि पाप जु कर्मा, नासें, भविजन सुनि जिनधर्मा।
चाकी उखरि और बुहारी, चूला बहुरि परंडा धारी ॥ २८६ ॥
हिंसा पांच तथा घर धंधा, इन पापनि करि पाप हि बंधा।
तिनके नासनकों षट कर्मा, सुभ भाषे जिनवरको धर्मा ॥ २८७ ॥
ए सब रीति मूलगुण माहीं, भाषें श्रीगुरु संसै नाहीं।
आठ मूलगुण अंगीकारा, करौ भव्य तुम पाप निवारा ॥ २८८ ॥
अर तजि सात विसन दुखकारी, पापमूल दुरगति दातारी।
जूवा आमिष मदिरादारी, आखेटक चोरी परनारी ॥ २८९ ॥
जूवा सम नहिं पाप जु कोई, सब पापनिको इह गुरु होई।
जूवारीको संग जु त्यागौ, दूतकर्मके रंग न लागौ ॥ २९० ॥
पासा सारि आदि बहु खेला, सब खेलनिमें पाप हि भेला।
सकल खेल तजि जिन भजि मानी, जाकर होय निजातमज्ञानी ॥ २९१ ॥
ठौर ठौर मद मांस जु निंदे, तातैं तजिये प्रभुकों वंदे।
तज वेस्या जो रजक-सिला सम, गनिकाको घर देखहु मति तुम ॥ २९२ ॥
त्यागि अहेरा दुष्ट जु कर्मा, है दयाल सेवौ जिनधर्मा।
करै अहेरा ते जु अहेरी, लहैं नर्कमें आपद ढेरी ॥ २९३ ॥
क्षत्रीको इह होय न कर्मा, क्षत्रीको है उत्तम धर्मा।
क्षत् कहिये पीराको नामा, पर-पीरा-हर जिनको कामा ॥ २९४ ॥
क्षत्री दुर्वलकों किम मारै, क्षत्री तौ पर-पीरा टारै।
मांस खाय सो क्षत्री कैसो, वह तौ दुष्ट अहेरी जैसो ॥ २९५ ॥
अर जु अहेरी तजै अहेरा, दयापाल है जिनमत हेरा।
तौ वह पावै उत्तमलोका, सवकों जीवदया सुखथोका ॥ २९६ ॥
त्यागौ चोरी जो सुख चाहौ, ठग विद्या तजि त्यो भवि लाहौ।
परधन भूले-विसरें आयौ, राखौ मति यह जिनश्रुत गायौ ॥ २९७ ॥

अमल थकी जदुनंदना, रिपिकों रिस उपजाय ।
भये भस्मभावा सबै, पाप करम फल पाय ॥ ३१२ ॥
केयक उबरे जिनजती, भये मुनीसुर जेह ।
येह कथा जिनसूत्रमें, तुम परगट सुन लेह ॥ ३१३ ॥
चारुदत्त इक सेठ हो, करि गनिकासों प्रीति ।
लही आपदा जिह घनी, गई संपदा वीति ॥ ३१४ ॥
ब्रह्मदत्त पापी महा, राजा हो मृग मार ।
आखेटक अपराधतें, बूड्यो नरक मझार ॥ ३१५ ॥
चोरी करि शिवभूति शठ, लहे बहुत दुख दोष ।
ताकी कथा प्रसिद्ध है, कहिवेको सतघोष ॥ ३१६ ॥
परदारा पर चित धरी, रावणसे बलवंत ।
अपजस लहि दुरगति गये, जे प्रतिहरि गुणवंत ॥ ३१७ ॥
विसन बुरे विसनी बुरे, तजो इनोंतें प्रीति ।
व्रत्त क्रियाके शत्रु ये, इनमें एक न नीति ॥ ३१८ ॥
अब सुनि भैया बात इक, गुण इकवीसा जेह ।
इनही मूलगुणानिकों, परिवारो गनि लेह ॥ ३१९ ॥
लज्जा दया प्रसांतता, जिनमारग परतीति ।
पर औगुनको ढांकिवो, पर-उपगार सुरीति ॥ ३२० ॥
सोमदृष्टि गुणग्रहणता, अर गरिष्ठता जानि ।
सबसों मित्राई सदा, वैरभाव नहिं मानि ॥ ३२१ ॥
पक्ष पुनीत पुमानको, दीरघदरसी सोय ।
मिष्ट वचन बोलै सदा, अर बहुज्ञाता होय ॥ ३२२ ॥
अति रसज्ञ धर्मज्ञ जो, है कृतज्ञ फुनि तज्ञ ।
कहै नम्र जाहूं वृथा, जो होवै तत्त्वज्ञ ॥ ३२३ ॥
नहीं दीनता भाव कछु, नहिं अभिमान धरेय ।
सबसों समताभाव है, गुणको विनो करेय ॥ ३२४ ॥
पापक्रिया सब परिहरै, ए गुण होय इकीस ।
इनको धारै सो सुधी, कहै धर्म जगदीस ॥ ३२५ ॥
इन गुण बाहिर जीव जो, श्रावक नाहिं गनेय ।
श्रावकव्रतके मूल ए, श्रीजिनराज वदेय ॥ ३२६ ॥

तैसें ए वसु मूलगुण, तपजप व्रतकी सींव ॥ ३४२ ॥

बेसरी छंद ।

ए दुरगति दाता न कदेही, शिव-कारण हैं कहइ विदेही ।
सम्यक सहित महाफल दाता, सब व्रतनिको सम्यक ताता ॥ ३४३ ॥
समकितसों नहिं और जु धर्मा, सकल क्रियामें सम्यक पर्मा ।
जाके भेद सुनों मन लाए, जाकरि आतम तत्त्व लखाए ॥ ३४४ ॥
भेद बहुत पर द्वै बड़ भेदा, निश्चै अर विवहार सुवेदा ।
निश्चय सरधा निज आतमकी, रुचि परतीति जु अध्यातमकी ॥ ३४५ ॥
सिद्ध समान लखै निज रूपा, अतुल अनंत अखंड अनूपा ।
अनुभव-रसमें भीग्यौ भाई, धोई मिथ्यामारग काई ॥ ३४६ ॥
अपनों भाव अपुनमें देखौ, परमानंद परम रस पेखौ ।
तीन मिथ्यात चौकड़ी पहली, तिन करि जीवनिकी मति गहली ॥ ३४७ ॥
मोह-प्रकृति हैं अट्ठावीसा, सात प्रबल भाषें जगदीसा ।
सात गये सबही नसि जावें, सर्व गये केवलपद पावें ॥ ३४८ ॥
उपशम क्षय-उपशम अथवा क्षय, सात तनों कीयौ तजि सब भय ।
ये निश्चय समकितको रूपा, उपजै उपशम प्रथम अनूपा ॥ ३४९ ॥
सुनि सम्यक व्यवहार प्रतीता, देव अठारा दोप वितीता ।
गुरु निरग्रंथ दिगंबर साधू, धर्म दयामय तत्त्व अराधू ॥ ३५० ॥
तिनकी सरधा दिढ़ करि धारै, कुगुरु कुदेव कुधर्म निवारै ।
सप्त तत्त्वको निश्चय करिवौ, यह विवहार सु सम्यक धरिवौ ॥ ३५१ ॥
जीव अजीवा आस्रव बंधा, संवर निर्जर मोक्ष प्रबंधा ।
पुण्य पाप मिलि नव ए होई, लखै जथारथ सम्यक सोई ॥ ३५२ ॥
ये हि पदारथ नाम कहावें, एई तत्त्व जिनागम गावें ।
नव पदार्थमें जीव अनंता, जीवन माहिं आप गुणवंता ॥ ३५३ ॥
लखै आपकों आप हि माहीं, सो सम्यकदृष्टी शक नाहीं ।
ए दोय भेद कहे समकितके, ते धारौ कारण निज हितके ॥ ३५४ ॥
सम्यकदृष्टी जे गुण धारै, ते सुनि जे भव-भाव विडारै ।
अठ मद त्यागे निर्मद होई, मार्दव धर्म धरै गुन सोई ॥ ३५५ ॥
राजगर्व अरु कुलको गर्वा, जाति मान बल मान जु सर्वा ।
रूप तनूं मद तपको माना, संपति अर विद्या अभिमाना ॥ ३५६॥

कहे अंग ए अष्ट प्रतक्षा, नहिं धरवौ सोई मल लक्षा।
इन अंगनि करि सीझे मानी, तिनको सुजस करै जिनवानी ॥ ३७२ ॥
जीव अनंत भये भवपारा, कौलग कहिये नाम अपारा।
कैयकके शुभ नाम बखानों, श्रुत अनुसार हिएमें आनों ॥ ३७३ ॥
अंजन और अनंतमती जो, राव उदायन कर्म हतीजो।
रेवति राणी धर्म-गढ़ासा, सेठ जिनेन्द्रभक्त अघ नासा ॥ ३७४ ॥
पर औगुन ढाँके जिह भाई, जिनवरकी आज्ञा उर लाई।
वारिषेण औ विष्णुकुमारा, वज्रकुमार भवोदधि तारा ॥ ३७५ ॥
अष्ट अंग करि अष्ट प्रसिद्धा, और बहुत हूए नर सिद्धा।
अठ मद त्यागि अष्ट मल त्यागा, तीन मूढ़ता त्यागि सभागा ॥ ३७६ ॥
षट जु अनायतनाको तजिवौ, ए पचीस महागुण भजिवौ।
अर तजिवौ तिनकूं भय सप्ता, निरभै रहिवौ दोष अलिप्ता ॥ ३७७ ॥
इह भव परभवको भय नाहीं, मरन वेदना भय न धराहीं।
हमरो रक्षक कोऊ नाहीं, इह संसै नाहीं घट माहीं ॥ ३७८ ॥
सबको रक्षक आयु जु कर्मा, कै जिनवर जिनवरको धर्मा।
और न रक्षक कोई काकों, इह गुरु गायौ गाढ़ जु ताकों ॥ ३७९ ॥
अर नहिं चोर तनों भय जाकों, अपनों निजधन पायौ ताकों।
चिद्घन धन चोरयौ नहिं जावै, तातैं चित्त अडोल रहावै ॥ ३८० ॥
अर नहिं अकस्मात भय कोई, जिन सम लखियो निज तन जोई।
चेतन तत्त्व लख्यौ अविनासी, तातैं ज्ञानी है सुखरासी ॥ ३८१ ॥
काहूको भय तिनकों नाहीं, भयरहिता निरवैर रहाहीं।
सप्त भया त्यागें गुण होई, सप्त विसन तजिवौ शुभ जोई ॥ ३८२ ॥
सप्त सप्त मिलि चौदा गुन ए, मिले पचीसा गुणता जु लए।
पंच अतीचारनकों टारौं, शंका कांक्षा कवहु न धारौं ॥ ३८३ ॥
नहिं दुरगंछा भाव करैंही, नहिं मिथ्यात सराह करैंही।
नहीं स्तवन मिथ्यादृष्टीको, यह लक्षण सम्यकदृष्टीको ॥ ३८४ ॥
पंच अतीचारनकूं त्यागा, सो है पंच गुणा बड़भागा।
मिलि गुणताली चौवालीसा, गुणा होंहि भाषै जगदीसा ॥ ३८५ ॥
इनकूं धारै सम्यकती सो, भवभय तजि पावै मुक्ती सो।
ए गुन मिथ्यातीके नाहीं, आतमज्ञान न मिथ्या माहीं ॥ ३८६ ॥

थावर पंच प्रकारके, चउविधि त्रस परवानि ।
सबसों मैत्रीभावना, सो करुणा उर आनि ॥ १० ॥
प्रथीकाय जलकायका, अगिनिकाय अर वाय ।
काय बहुरि है वनस्पति, ए थावर अधिकाय ॥ ११ ॥
वे इंद्री ते इन्द्रिया, चउ इंद्रिय पंचेन्द्रि ।
ए त्रस जीवा जानिये, भाषैं साधु जितेन्द्रि ॥ १२ ॥
कृत-कारित-अनुमोद करि, धरैं अहिंसा जेह ।
ते निर्वाणपुरी लहैं, चउ गति पाणी देह ॥ १३ ॥
निरारंभ मुनिकी दसा, तहां न हिंसा लेस ।
छहूं काय पीराहरा, मुनिवर रहित कलेस ॥ १४ ॥
गृहपतिके गृहजोगतैं, कछु आरंभ जु होइ ।
तातैं थावरकायको, दोष लगै अघ मोइ ॥ १५ ॥
पै न करै त्रसघात वह, मन वच तन करि धीर ।
त्रस कायनको पीहरा, जानैं परकी पीर ॥ १६ ॥
बिना प्रयोजन वह सुधी, थावर हू पेरै न ।
जो निशंक थावर हनै, जिनके जिन नैरै न ॥ १७ ॥
हिंसाको फल दुरगती, दया सुर्ग-सुख देइ ।
पहुंचावै पुनि शिवपुरे, अविनाशी जु करेइ ॥ १८ ॥
दया मूल जिनधर्मको, दया समान न और ।
एक अहिंसा व्रतही, सब व्रतनिको मौर ॥ १९ ॥
यमनियमादिक बहुत जे, भाषे श्रीजिनराय ।
ते सहु करुणा कारणैं, और न कोइ उपाय ॥ २० ॥
बिना जैनमत पर दया, दूजे मन दीजै न ।
दयाधर्म जिनदास है, हिंसा विधि सीजै न ॥ २१ ॥
दया दया सब कोइ कहै, मर्म न जानैं मूढ़ ।
अणगाल्यूं पाणी पिवैं, ते हि दयातैं दूर ॥ २२ ॥
दया धर्म सबही कहै, भेद न पावै कोय ।
बरतैं अणगाल्यो उदक, दया कहांतैं होय ॥ २३ ॥
दया बिना करणी वृथा, यह भाखैं सब कोय ।
तातैं अणगाले जलहि, कोई अचवे थोय ॥ २४ ॥

मंगल कारण जे जड़ा, जीवनिको जु निपात।
करें, अमंगल ते लहें होय महा उतपात ॥ ४० ॥
जे अपने जीवे निमित, करें पारको नास।
ते लहि कुमरण वेगही, गहें नरकको वास ॥ ४१ ॥
मद्य मांस मधु खाय करि, जे बांधें अघकर्म।
ते काहेके मिनख हैं, इह भाखे जिनधर्म ॥ ४२ ॥
कंदमूल फल खाय करि, करें जु वनको वास।
तिनको वनवास जु वृथा, होय दयाको नास ॥ ४३ ॥
बिना दया तप है कुतप, जाकरि कर्म न जांय।
हिंसक मिथ्यामत धरा, नरक निगोद लहाय ॥ ४४ ॥
जैसो अपनों आतमा, तैसे सबही जीव।
यह लखि करुणा आदरौ, भाखें त्रिभुवन पीव ॥ ४५ ॥

जोगीरास।

काहेके ते तापस दुष्टा, करुणा नाहिं धरावें।
कर अगनी आरंभ सपष्टा, जीव अनेक जरावें ॥ ४६ ॥
ते तजि कपड़ा तपके कारण, धारें शठमति चर्मा।
ते न तपस्वी भवदधि तारण, बांधें अशुभ जु कर्मा ॥ ४७ ॥
रिषि तौ ते जे जिनवर भक्ता, नगन दिगंबर साधा।
भव तनु भोगयकी जु विरक्ता, करै न थिर चर बाधा ॥ ४८ ॥
मैत्री मुदिता करुणा भावा, अर मध्यस्थ जु धारें।
राग दोष मोहादि अभावा, ते भवसागर तारें ॥ ४९ ॥
विना दया नहिं मुनिव्रत होई, दया विना न गृही है।
उभय धर्मको सरवस करुणा, जा विन धर्म नहीं है ॥ ५० ॥
दया करौ मुखतें सब भाखें, भेद न पावें पूरा।
बासी भोजन भाखि करि भोंदू, रहें धर्मतें दूरा ॥ ५१ ॥
बासी भोजन माहिं जीव बहु, भखें दया नहिं होई।
दया विना नहिं धर्म न व्रता, पावें दुरगति सोई ॥ ५२ ॥
अत्थाणा संधाण मथाणा, कांजी आदि अहारा।
करें विवेकबाहिरा कुबुधी, तिनके दया न धारा ॥ ५३ ॥
मांसाहारीके घरको भोजन, करें कुमतिके धारी।
तिनके घट करुणा कहु कैसें, कहां शोध आचारी ॥ ५४ ॥

दया दोय विधि है भया, स्व-पर दया श्रुत माहिं।
सो धारौ दिढ चित्तमें, जा करि भव-भ्रम जाहिं ॥ ७० ॥
स्वदया कहिये सो सुधी, रागादिक अरि जेह।
हनें जीवकी शुद्धता, टारि तिन्हें शिव लेह ॥ ७१ ॥
प्रगट करै निज शुद्धता, रागादिक मद मोरि।
निज आतम रक्षा करै, डारै कर्म जु तोरि ॥ ७२ ॥
सो स्वदया भाषें गुरू, हरै कर्म-विस्तार।
निज हि बचावे कालतें, करै जीव निस्तार ॥ ७३ ॥
षट कायाके जीव सहु, तिनतें हेत रहाय।
वैरभाव नहिं कोयसूं, सो पर-दया कहाय ॥ ७४ ॥
दया मात सब जगतकी, दया धर्मको मूल।
दया उधारै जगततैं, हरै जीवकी भूल ॥ ७५ ॥
दया सुगुनकी बेलरी, दया सुखनकी खान।
जीव अनंता सीजिया, दयाभाव उर आन ॥ ७६ ॥
स्व-पर दया दो विधि कही, जिनवाणीमें सार।
दयावंत जे जीव हैं, ते पावें भवपार ॥ ७७ ॥

सवैया इकतीसा।

सुकृतकी खानि इंद्रपुरीकी नसैनी जानि,
पाप-रज खंडनकों पौनरासि पेखिये।
भवदुख-पावक बुझायवेकूं मेघमाला,
कमला मिलायवेकों दूती ज्यूं विसेखिये ॥
मुकति-वधूसों प्रीति पालिवेकों आली सम,
कुगतिके द्वार दिढ़ आगलसी देखिये।
ऐसी दया कीजै चित्त तिहूं लोक प्राणी हित,
और करतूति काहू लेखेमें न लेखिये ॥ ७८ ॥

दोहा।

जो कबहूं पाषाण जल,-माहिं तिरै अर भान-।
ऊगै पश्चिमकी तरफ, दैवजोग परवान ॥ ७९ ॥
शीतल गुन है अगनिमें, धरा पीठ उल्टेय।
तौहू हिंसाकर्मतें, नाहीं शुभमति लेय ॥ ८० ॥

हुती धनश्री पापिनी, वणिकनारि विभचारि ।
गई नरकमें पुत्र हति, मानुष जन्म विगारि ॥ ९६ ॥
हिंसाके अपराधतें, पापी जीव अनंत ।
गये नरक पावे दुखा, कहत न आवे अंत ॥ ९७ ॥
जे निकसे भवकूपतें, ते करुणा उर धारि ।
जे बूडे भवकूपमें, ते सब हिंसाकार ॥ ९८ ॥
महिमा जीवदया तनी, जानें श्री जगदीश ।
गणधरहू काथि ना सकें, जे चउ ज्ञान अधीश ॥ ९९ ॥
कहि न सकें इंद्रादिका, कहि न सकें अहमिंद्र ।
कहि न सकें लोकांतिका, कहि न सकें जोगिंद्र ॥ १०० ॥
कहि न सकें पातालपति, अगणित जीभ बनाय ।
सो महिमा करुणा तणी, हमपें वरनि न जाय ॥ १०१ ॥
दया मातको आसरो, और सहाय न कोय ।
करि प्रणाम करुणा व्रतें, भाषों सत्य जु सोय ॥ १०२ ॥

इति दयाव्रत निरूपण ।

हिंसा है परमादतें, अर प्रमादतें झूंठ ।
तातें तजो प्रमादकूं, देय पापसों पूठ ॥ १०३ ॥

चौपई ।

श्री ' पुरुषारथसिद्धिउपाय ' ग्रंथ सुन्यां सब पाप लुपाय ।
जहँ द्वादश व्रत कहे अनूप, सम दम यम नियमादि स्वरूप ॥ १०४ ॥
सम जु कहावे समताभाव, सम्यकरूप भवोदधि नाव ।
दम कहिये मन इंद्रिय रोध, जाकरि लहिये केवलबोध ॥ १०५ ॥
जावोजीव वरत यम कह्यौ, अवधिरूप सो नियम जु लह्यौ ।
ऐसें भेद जिनागम कहै, निकट भव्य है सोही गहै ॥ १०६ ॥
तामें सत्य कह्यो चउभेद, सो सुनि करि तुम धरहु अछेद ।
चउविधि झूंठ तनों परिहार, सो है सत्य महागुण सार ॥ १०७ ॥
प्रथम असत्य तजो बुध वहै, वस्तु छतीकूं अछती कहै ।
दूजे अछतीकों जो छती,–भाषै अविवेकी हतमती ॥ १०८ ॥
तीजे कहै औरसों और, विरथा मूढ़ करै झकझोर ।
चौथे झूठ तनें त्रय भेद, गर्हित सावद्य प्रीति उछेद ॥ १०९ ॥

चावार्क बोधा विपरीति, तिनके नाहिं सत्य परतीति।
कौलिक पातालिक जे जानि, इनमें सत्य लेश मति मानि ॥ १२६ ॥
सत्य समान न धर्म जु कोय, बड़ो धर्म इह सत्य जु होय।
सत्यथकी पावै भव पार, सत्यरूप जिनमारग सार ॥ १२७ ॥
सत्यप्रभाव शत्रु ह्वै मित्र, सत्य समान न और पवित्र।
सत्यप्रसाद अगनि ह्वै शीत, सत्यप्रसाद होय जगजीत ॥ १२८ ॥
सत्यप्रभाव भृत्य ह्वै राव, जल ह्वै थल धरिया सतभाव।
सुर ह्वै किंकर वन पुर होय, गिरि ह्वै घर सम सत करि जोय ॥ १२९ ॥
सर्प माल ह्वै हरि मृग रूप, बिल सम ह्वै पाताल विरूप।
कोऊ करै शस्त्रकी घात, शस्त्र होय सो अंबुजपात ॥ १३० ॥
हाथी दुष्ट होय सम स्याल, विष ह्वै अमृतरूप रसाल।
कठिन सुगम ह्वै सत्यप्रभाव, दानव दीन होय निरदाव ॥१३१ ॥
सत्यप्रभाव लहै निजज्ञान, सत्य धरे पावै वर ध्यान।
सत्यप्रसाद होय निरवाण, सत्य विना पुरुष न परवाण ॥ १३२ ॥
सत्यप्रसाद वणिक धनदेव, राजा करि पाई बहु सेव।
इह भव पर भव सुखमय भयौ, जाको पाप करम सब गयौ ॥ १३३ ॥
झूठथकी बसु राजा आदि, पर्वत विप्र सत्यघोषादि।
जगदेवादिक वाणिज घनें, गये दुरगती जाँय न गिनें ॥ १३४ ॥
सत्य दयाको रूप न दोय, दया विना नहिं सत्य जु होय।
सत्य तनें द्वय भेद अछेद, विवहारो निश्चय निरखेद ॥ १३५ ॥
निश्चै सत्य निजातम बोध, विवहारो जिन वचन प्रबोध।
सत्य विना सब व्रत तप आदि, सत्य सकल सूत्रनमें आदि ॥ १३६ ॥
सत्य प्रतिज्ञा बिन यह जीव, दुरगति मांहि फिरै अतीव।
सूकर कूकर हक चंडार, घूघू स्याल काग मंजार ॥ १३७ ॥
नाग आदि जे जीव विरूप, तापर सबतें निर्दय रूप।
सबतें बुरो महा अनपर्श, तापरको लखिये नहिं दर्श ॥ १३८ ॥
चुगली-सांचहु झूठ हि जानि, चुगल महा चंडाल समान।
चुगली उगली मुखतें जबै, इह भव पर भव खोवे तबै ॥ १३९ ॥
सत्यहेत धारो भवि मौन, सत्य विना सब संजम गौन।
थोरो बोलहु कारण सत्य, मन वच तन करि तजौ असत्य ॥ १४० ॥

तौ वाकों चितएय जु भया, देहु परायो माल जु लया ।
भूलिर थोरो मांगै वहै, तौ वाकों समझायर कहै ॥ १५६ ॥
तुमरो देनों इतनों ठीक, अलप बतावन बात अलीक ।
ले जावौ तुमरो यह माल, लेखामें चूकौ मति लाल ॥ १५७ ॥
घटि देवेको जो परणाम, सो न्यासापहार दुखधाम ।
अथवा धरी पराई वस्त, जाकी बुद्धि भई विध्वस्त ॥ १५८ ॥
और ठौरकी और जु ठौर, करै सोइ पापनि सिरमौर ।
पुन साकारमंत्र है भेद, तजौ सुबुद्धी सुनि जिनवेद ॥ १५९ ॥
दुष्ट जीव परको आकार, लखतो रहै दुष्टताकार ।
लखि करि जानै परको भेद, सो पावै भववनमें खेद ॥ १६० ॥
पर मंत्रनिको करइ विकाश, सो खल लहै नरकको वास ।
जो परद्रोह धरै चितमाहिं, इह भव दुखलहि नरकहिं जाहिं ॥ १६१ ॥
अतीचार ए पांचों त्यागि, सत्य धरमके मारग लागि ।
परदारा परद्रव्य समान, और न दोष कहैं भगवान् ॥ १६२ ॥
परद्रोह सो पाप न और, निंद्यौ श्रुतमें ठौर जु ठौर ।
जिन जान्यूं निज आतमराम, तिनके परधनसों नहिं काम ॥ १६३ ॥
सत्य कहै चोरी परनारि,—त्यागी जाइ यहै उरधारि ।
झूंठ बकै ते जैनी नाहिं, परधन हरन न या मत माहिं ॥ १६४ ॥

दोहा ।

सत्यप्रभावें धर्मसुत, गए मोक्ष गुणकोश ।
लहे झुठ अर कपटतें, दुर्योधन दुख दोष ॥ १६५ ॥
जे सुरझें ते सत्य करि, और न मारग कोय ।
जे उरझें ते झूंठ करि, यह निश्चै उर लोय ॥ १६६ ॥
सत्यरूप जिनदेव है, सत्यरूप जिनधर्म ।
सत्यरूप निर्ग्रंथ गुरु, सत्य समान न पर्म ॥ १६७ ॥
सत्यारथ आतम धरम, सत्यरूप निर्वाण ।
सत्यरूप तप संयमा, सत्य सदा परवाण ॥ १६८ ॥
महिमा सत्य सुव्रतकी, कहि न सकें मुनिराय ।
सत्य वचन परभावतें, सेवें सुरनर पांय ॥ १६९ ॥
जैसौ जस है सत्यको, तैसौ श्रीजिनराय ।
जानें केवलज्ञानमें, परमरूप सुखदाय ॥ १७० ॥

मति दगड़ा लूटो भाई, दौड़ाई है दुखदाई ।
ठगविद्या त्यागो मित्रा, परधन है अति अपवित्रा ॥ १८६ ॥
काहूकूं द्यो मति तापा, छाँड़ो तन मन वच पापा ।
पासीगर सम नहि पापी, पर प्राण हरै संतापी ॥ १८७ ॥
सो महानरकमें जावै, भव-भवमें अति दुख पावै ।
हाकिम है धन मति चोरौ, ले सूंक न्याव मति वोरौ ॥ १८८ ॥
लेखामें चूक न कारै, इहि नरभव मूढ ! न हारै ।
ज्यां हरियो परको वित्ता, ते पापी दुष्ट जु चित्ता ॥ १८९ ॥
रुलिहै भव माहिं अनंता, जो परधन प्राण हरंता ।
चुगली करि मति हि लुटावौ, काहूकूं नाहिं कुटावौ ॥ १९० ॥
परकी ईजति मति हरिहो, परको उपगार जु करिहो ।
धन धान नारि पसु वाला, हरिये कहुके नहिं लाला ॥ १९१ ॥
काहूको मन नहिं हरिये, हिरदामें श्रीजिन धरिये ।
तिर नर जीवनिकी जीवी, मेटौ मति करुणा कीवी ॥ १९२ ॥
तुम शल्य न राखौ वीरा, करि शुद्ध चित्त गुणधीरा ।
रोका वांधी मति करिहो, काहूकी सौंपि न हरिहो ॥ १९३ ॥
बोलो मति दुष्ट जु वाके, तुम दोप गहौ मति काके ।
काहूको मर्म न छेदो, काहूको छेत्र न भेदो ॥ १९४ ॥
काहूकी कछु नहिं वस्ता, मति हरहु होय शुभ अस्ता ।
इह व्रत धारो वर वीरा, पावो भवसागर तीरा ॥ १९५ ॥
जाकरि है कर्म विध्वस्ता, सो भाव धरो परशस्ता ।
तृण आदि रत्न परजंता, परधन त्यागौ बुधिवंता ॥ १९६ ॥
हरिवो रागादिक दोपा, करवो कर्मनको सोपा ।
हरि भर्म, धर्म धरि भाई, हूजे त्रिभुवनके राई ॥ १९७ ॥
अपनो अर परको पापा, हरिये जिनवचन प्रतापा
छांड़ै जु अदत्ता दाना, करि अनुभव अमृत पाना ॥ १९८ ॥
चोरी त्यागें शिव होई, चोरी लागे शठ सोई ।
चोरीके दोय विभेदा, निश्चै व्यौहार विछेदा ॥ १९९ ॥
निश्चै चोरी इह भाई, तजि आतम जड़ लवलाई ।
पर परणति प्रणमन चोरी, छाँड़ें ते जिनमत धोरी ॥ २०० ॥

ते मुनिवर ज्ञानसरूपा, शुभ पचं महाव्रतरूपा ।
गृहपतिके कछु इक धंधा, कछु ममता मोह प्रबंधा ॥ २१६ ॥
छानें कछु करनों आवे, तातें अणुव्रत्त कहावे ।
कूपादिकको जल हरवौ, इह किंचित दोषहु धरवौ ॥ २१७ ॥
मोटे सब त्यागें दोषा, काहूको हरय न कोषा ।
त्यागौ परधनको हरवौ, छाँड़ौ पापनिको करवौ ॥ २१८ ॥

....

इह अणुव्रतको जु सरूपा, जिनश्रुत अनुसार परूपा ॥ २१९ ॥
अब अतीचार सुनि भाई, त्यागौ पंच हि दुखदाई ।
है चोरीको जु प्रयोगा, सो पहलो दोष अजोगा ॥ २२० ॥
चोरीको माल जु लेनों, इह दूजो अघ तजि देनों ।
थोरे मोले वड़ वस्ता, लेवौ नहिं कवहु प्रशस्ता ॥ २२१ ॥
राजाको हांसिल गोपै, राजाकी आणि जु लोपै ।
इह तीजो दोष निरूपा, त्यागौ, व्रतधारि अनूपा ॥ २२२॥
देवेके तोला घाटे, लेवेके अधिका वाटे ।
इह अतिचार है चौथो, त्यागौ शुभमतितें थोथो ॥ २२३ ॥
वधि मोलमें घाटी मोला, भेले है पाप अतोला ।
इह पंचम है अतिचारा, त्यागें जिनमारग धारा ॥ २२४ ॥
ए अतीचार गुरु भाखे, जैनी जीवनिनें नांखे ।
चोरी करि दुरगति होई, चोरी त्यागें शुभ सोई ॥ २२५ ॥
चोरी तजि अंजनचोरा, तिरियो भवसागर घोरा ।
लहि महामंत्र तप गहिया, ध्यानानल भववन दहिया ॥ २२६ ॥
अंजन हूऔ जु निरंजन, इह कथा भव्य मनरंजन ।
वहुरी नृप श्रेणिक पुत्रा, है वारिषेण जगमित्रा ॥ २२७ ॥
कर परधनको परिहारा, पायौ भवसागर पारा ।
चोरी करि तापस दुष्टा, पंचागन साधनि पुष्टा ॥ २२८ ॥
लहि कोटपालकी त्रासा, मरि नरक गयौ दुख भासा ।
दलिद्रको मूल जु चोरी, चोरी तजि अर तजि जोरी ॥ २२९ ॥
सब अघ तजि जिनसों जोरी, विनऊं भय्या कर जोरी ।
चोरी तजियां शिव पावै, यह महिमा श्री जिन गावें ॥ २३० ॥

विद्या ब्रह्म-विज्ञानसी, नहीं दूसरी जान ।
विज्ञ नहीं ब्रह्मज्ञ सो, इह निश्चै उर आन ॥ २४५ ॥
ब्रह्म वासना सारिखी, और न रसकी केलि ।
विषैवासना सारिखी, और न विषकी बेलि ॥ २४६ ॥
आतम अनुभव शक्तिसी, और न अमृतवेलि ।
नहीं ज्ञान सो बलवता, देहि मोहकों ठेलि ॥ २४७ ॥
अव्रत नाहिं कुशील सो, नरक निगोद प्रदाय ।
नहीं सील सो संजमा, भाषै श्रीजिनराय ॥ २४८ ॥
धर्म न श्रीजिनधर्म से, नहिं जिनवर से देव ।
गुरु नहिं मुनिवर सारिखे, रागी से न कुदेव ॥ २४९ ॥
कुगुरु न परिग्रहधारि से, हिंसा सो न अधर्म ।
भर्म न मिथ्यासूत्र सो, नहीं मोह सो कर्म ॥ २५० ॥
द्रव्य न कोई जीव सो, गुन न ज्ञान सो आन ।
ज्ञान न केवलज्ञान सो, जीव न सिद्ध समान ॥ २५१ ॥
केवलदर्शन सारिखो, दर्शन और न कोइ ।
यथाख्यात चारित्र सो, चारित और न होइ ॥ २५२ ॥
नहिं विभाव मिथ्यात सो, सम्यक सो नहिं भाव ।
क्षायिक सो सम्यक नहीं, नहीं शुद्ध सो भाव ॥ २५३ ॥
साधु न क्षीणकषाय से, श्रेणि न क्षपक समान ।
नहिं चौदम गुणथान सो, और कोइ गुणथान ॥ २५४ ॥
नहिं केवल परनाम सो, और कोई परमाण ।
शुकल ध्यान सो ध्यान नहिं, जिनमत सो न कल्याण ॥ २५५ ॥
अनुभव सो अमृत नहीं, नहिं अमृत सो पान ।
इंद्री रसनासी नहीं, रस न शांति सो आन ॥ २५६ ॥
मनोगुप्तिसी गुप्ति नहिं, चंचल मन सो नाहिं ।
निश्चल मुनि से और नहिं, नहीं मौन सम माहिं ॥ २५७ ॥
मुनि से नहिं मनिवेन नर, नहिं चक्री से राव ।
हलधर अरु हरि सारिखो, इंद न कहूं सराव ॥ २५८ ॥
प्रतिहरि से न हठी भट, हरि से और न सूर ।
तप से साधन धार नहिं, बहु विधानभरपूर ॥ २५९ ॥

अर्हत सिध साधू सबै, केवलिभाषित धर्म।
इन चउसे नहिं मंगला, उत्तम और न पर्म॥ २७५॥
इन चउ सरण न सारिखे, सरण नाहिं जग माहिं।
संघ न चउविधि संघ से, जिनके संसय नाहिं॥ २७६॥
चोर न इंद्री-चित्त से, मुसैं धर्मधन भूरि।
चारित से नहिं तलवरा, डारैं चोरनि चूरि॥ २७७॥
जैसैं ए उपमा कही, तैसैं शील समान।
व्रत्त न कोई दूसरो, भाषै श्री भगवान॥ २७८॥
वक्ता सर्वग से नहीं, श्रोता गणधर से न।
कथन न आतमज्ञान सो, साधक साधु जिसे न॥ २७९॥
बाधक नहिं रागादि से, तिनहिं तजैं जोगिंद।
नहिं साधन समभाव से, धारैं धीर मुनिंद॥ २८०॥
पाप नहीं परद्रोह सो, त्यागैं सज्जन संत।
पुन्य न पर उपगार सो, धारैं नर मतिवंत॥ २८१॥
लेस्या शुकल समान नहिं, जामैं उज्जलभाव।
उज्जलता नकपायसी, और न कोई लखाव॥ २८२॥
दयाप्रकाशक जगतमैं, नहीं जैन सो कोइ।
पर्म धर्म नहिं दूसरो, दया सारिखो होइ॥ २८३॥
कारण निज कल्याणको, करुणा तुल्य न जानि।
कारण जिन विश्वासको, नहीं सत्य सो मानि॥ २८४॥
सत्यारथ जिनसूत्र सो, और न कोइ प्रवानि।
सर्वसिद्धिको मूल है, सत्य हियेमैं आनि॥ २८५॥
नहिं अचौर्यव्रत सारिखौ, भै हरि भ्रांति निवार।
नहिं जिनेन्द्रमत सारिखौ, चोरी बरज उदार॥ २८६॥
नहीं सील सो लोकमैं, है दूजो अविकार।
कारण शुद्धस्वभावको, भवजल तारणहार॥ २८७॥
नहिं जिनसासन सारिखौ, शील प्रकाशन द्वार।
या संसार असारमैं, जा सम और न सार॥ २८८॥
नहिं संतोष समान है, सुखको मूल अनूप।
नहीं जिनेसुरधर्म सो, वर संतोषस्वरूप॥ २८९॥

ध्यान नहीं जिनध्यान सो, जो कैवल्यस्वरूप ।
जा प्रसाद भवरूप मिटि, जीव होय चिद्रूप ॥ ३०५ ॥
क्षीणमोह से लोकमें, ध्यानी और न जानि ।
कारण आतमध्यानको, मननिश्चलता मानि ॥ ३०६ ॥
कारण मन वसिकरणको, नहीं जोग सो और ।
जोग न निजसंजोग सो, है सबको सिरमौर ॥ ३०७ ॥
भोग न निजरसभोग सो, जामें नाहिं विजोग ।
रोग न इंद्रीभोग सो, इह भाषें भवि लोग ॥ ३०८ ॥
शोक न चिंता सारिखौ, विकलरूप बड़रूप ।
नहिं संसै अज्ञान सो, लखौ न चेतनरूप ॥ ३०९ ॥
विकलप-जाल प्रत्याग सो, और नहीं वैराग ।
वीतराग से जगतमें, और नहीं बड़भाग ॥ ३१० ॥
छती संपदा चक्रिकी, जो त्यागै मतिवंत ।
ता सम त्यागी और नहिं, भाषें श्रीभगवंत ॥ ३११ ॥
चाहे अछती भूतिकों, करै कल्पना मूढ़ ।
ता सम रागी और नहिं, सो सठ विषयारूढ़ ॥ ३१२ ॥
नव जोवनमें व्याह तजि, बालब्रह्मव्रत लेय ।
ता सम वैरागी नहीं, सो भवपार लहेय ॥ ३१३ ॥
कंटक नहिं क्रोधादि से, चढ़ि जु रहे गिरि[1] मान ।
मुनिवर से जोधा नहीं, शस्त्र न शुकल[2] समान ॥ ३१४ ॥
भाव समान न भेप है, भाव समान न सेव ।
भाव समान न लिंग है, भाव समान न देव ॥ ३१५ ॥
ममता-माया रहित सो, उत्तम और न भाव ।
सोई[3] सुध कहिये महा, वर्जित सकल विभाव ॥ ३१६ ॥
कारण आतमध्यानको, भगवतभाक्ति समान ।
और नहीं संसारमें, इह धारौ मतिमान ॥ ३१७ ॥
विघन हरण मंगल करण, जप सम और न जानि ।
जप नहिं अजेपाजाप सो, इह श्रद्धा उर आनि ॥ ३१८ ॥
कारण रागविरोधको, भाव असुद्ध जिसौ न ।
कारण समताभावको, विरकितभाव तिसौ न ॥ ३१९ ॥

१ मानरूपी पर्वत । २ शुक्लध्यान । ३ सोऽहं ।

नहिं लक्खणे उपयोगसे, आतमतें जु अभेद ।
नाहिं कुलक्खण कुबुधि से, करै धर्मको छेद ॥ २३५ ॥
धर्म अहिंसारूपके, भेद अनेक बखान ।
नहिं दशलक्षणधर्म से, जगमें और निधान ॥ २३६ ॥
क्षमा उत्तमा सारिखौ, और दूसरो नाहिं ।
दशलक्षणमें मुख्य है, क्रोधहरण जग माहिं ॥ २३७ ॥
नीर न शांतिस्वभाव सो, अगनि न कोप समान ।
मान समान न नीचता, नहिं कठोरता आन ॥ २३८ ॥
मानीको मन लोकमें, पाहनतुल्य बखान ।
मान समान अज्ञान नहिं, भाखै श्रीभगवान ॥ २३९
निगरवभाव समान सो, पद नहिं जगमें और ।
हरै समस्त कठोरता, है सबको सिरमौर ॥ २४० ॥
कीच न कपट समान सो, पंक न शपट समान ।
सरलभाव सो उज्जल न, सुधौ कोइ न आन ॥ २४१ ॥
आपद लोभ समान नहिं, लोभ समान न लोय ।
लोभ समान न मोह है, दुख औगुन समुदाय ॥ २४२ ॥
नहिं संतोष समान धन, ता सम सुखी न कोय ।
नहिं ता सम अमृत महा, निर्मल गुण है सोय ॥ २४३ ॥
शुभ नहिं निर्मलभाव सो, जासों न अशुभ सुभाव ।
नाहिं मलिन परिणाम सो, दूजो कोई कुभाव ॥ २४४ ॥
सन्देह न अयथार्थ सो, जासरि भर्म न जाय ।
नहिं यथार्थ सो लोकमें, निस्संदेह कहाय ॥ २४५ ॥
नाहिं कलंक कुवाद सो, भाषै श्रीजिनचन्द ।
निःकलंक अपवाद से, धरै धर्मको अंग ॥ २४६ ॥
शुचि नहिं मनशुचि सारिखी, करै जीवको शुद्ध ।
अशुचि नहीं मनअशुचिसी, यह भाखै अनिरुद्ध ॥ २४७ ॥
नाहिं असंयम सारिखो, अशुभ दुखोदय द्वार ।
नहिं संयम सो मोक्षके, ज्ञान चतुष्टय द्वार ॥ २४८ ॥
ईर्ष्या नहिं परद्वेष से, तजै स्वपरको खोट ।
हिंसात्मक सारिखो, नाहिं दयाको खोट ॥ २४९ ॥

नाद न सोऽहं सारिखौ, नहीं स्वरसै सो स्वाद ।
स्याद्वाद सिद्धांत सो, और नहीं अविवाद ॥ २६४ ॥
एक एक नय पक्ष सो, और न कोई वाद ।
नाहिं विषाद विवाद सो, निद्रा सो न प्रमाद ॥ २६५ ॥
स्त्यानगृद्धिनिद्रा जिसी, निद्रा निंद्य न और ।
परनिंदा सो दोष नहिं, भाषैं जिन जगमौर ॥ २६६ ॥
निंदा चउविधि संघकी, ता सम अघ नहिं कोय ।
नाहिं प्रसंसा जोगि कोउ, जिन आगम सो होय ॥ २६७ ॥
सार न अध्यातम जिसौ, निज अनुभवको मूल ।
नहिं मुनि से अध्यातमी, सर्व विषय प्रतिकूल ॥ २६८ ॥
विषय कषाय बराबरी, वैरी जियके नाहिं ।
ज्ञान विराग विवेक से, हितू नाहिं जग माहिं ॥ २६९ ॥
अध्यातम चरचा समा, चरचा और न कोय ।
जिनपद अरचा सारिखी, अरचा और न होइ ॥ २७० ॥
नाहिं गणाधिप से महा,—चरचाकारक जानि ।
नाहिं सुराधिप सारिखे, अरचाकारक मानि ॥ २७१ ॥
गमन न ऊरध गमन सो, नहीं मोक्ष सो धाम ।
रोधक नाहीं कर्मसे, हरौ कर्म तजि काम ॥ २७२ ॥
शत्रु न कोइ अधर्म सो, मित्र न धर्म समान ।
धर्म न वस्तुस्वभाव सो, हिंसा रहित बखान ॥ २७३ ॥
निजस्वभावको विस्मरण, नहिं ता सम अपराध ।
साधै केवलभावकों, ता सम और न साध ॥ २७४ ॥
नरदेही सम देह नहिं, लिंग न पुरुष समान ।
वेद नहीं नरवेद सो, सुमन समो न सयान ॥ २७५ ॥
त्रसकाया सम काय नहिं, पंचेन्द्री जा माहिं ।
पंचेंद्री नहिं मिनष से, जे मुनिव्रत धराहिं ॥ २७६ ॥
मुनि नहिं तद्भवमुक्ति से, जे केवलपद पाय ।
पहुँचैं पंचमगति महा, चहुंगति भ्रमण नशाय ॥ २७७ ॥

१ आत्मरस । २ जिसके उदयसे जब कर कोई भारी काम करके और फिर सो जाय और उठकर जागने पर यह भी न मालूम हो कि मैंने क्या काम किया था । ३ जिनेन्द्र भगवानकी पूजा ४ श्रेष्ठ ।

मैल न मोहातुर समो, सकलकर्मको राव ।
महामल्ल नहिं योधं सो, हरै मोह परभाव ॥ ३९२ ॥
भर्म न कोई कर्म से, कारण संसै जानि ।
भ्रमहारी सम्यक्त से, और न कोई मानि ॥ ३९३ ॥
विष नहिं विषयानंदसे, देहि अनंता मर्ण ।
सुधा न ब्रह्मानंद सो, अनुभवरूप अवर्ण ॥ ३९४ ॥
क्रूर न क्रोधी सारिखे, नहीं क्षमी से शांत ।
नीच न मानी सारिखे, निगरव से न महांत ॥ ३९५ ॥
मायावी सो मलिन नहिं, विमल न सरल समान ।
चिंतातुर लोभीन से, दीन न दुखी अयान ॥ ३९६ ॥
दुष्ट न दोषी सारिखे, रागी से नहिं अंध ।
अहंकार ममकार सो, और न कोई बंध ॥ ३९७ ॥
मोही से नहिं लोकमें, गहलरूप मतिहीन ।
कामातुर से आतुर न, अविवेकी अघलीन ॥ ३९८ ॥
ऋण नहिं आस्रव-बंध से, राखैं भवमें रोकि ।
मुनिवर से मनिवंत नहिं, हूंडे ब्रह्म विलोकि ॥ ३९९ ॥
संवर निर्जर सारिखे, रिणमोचन नहिं कोइ ।
दुर्जर कर्म हरैं सदा, मुक्तिदायका सोइ ॥ ४०० ॥
विपति न वांछा सारिखी, वांछा रहित मुनीस ।
मृगतृष्णा मिथ्या जिसी, और न कोई रिपीस ॥ ४०१ ॥
समतासी संसारमें, साता कोइ न जानि ।
सातासी न सुहावनी, इह निश्चै उर आनि ॥ ४०२ ॥
ममतासी मानों भया, और असाता नाहिं ।
नाहिं असाता सारिखी, है अनिष्ट जगमाहिं ॥ ४०३ ॥
इ[illegible] सारिखी, [illegible] न कोय ।
जग अनुराग समानता, [illegible] न कोय ॥ ४०४ ॥
नाहिं भोग-अभिलाषसी, भूख अपूरव और ।
नाहिं भोग-वैराग्यसी, [illegible] है और ॥ ४०५ ॥

[illegible]

नाहीं इष्ट वियोग सो, सोगमूल है कोइ।
काया-माया सारिखो, इष्ट न जगके जोइ॥ ४२१॥
नहिं संकल्प विकल्प सो, जाल दूसरो जानि।
नहिं निरविकलप ध्यान सो, छेदक जाल बखानि। ४२२॥
नहीं एकता सारिखी, परम समाधि स्वरूप।
नहीं विषमतासी अवर, सठतारूप विरूप॥ ४२३॥
चिंतासी असमाधि नहिं, नहिं तृष्णासी व्याधि।
नहिं ममतासी मोहनी, मायासी न उपाधि॥ ४२४॥
ज्ञानानंदादिक महा, निजस्वभाव निरदाव।
तिनसौं तन्मय भाव जो, सो एकत्व कहाव॥ ४२५॥
आसासी न पिसाचिनी, आसासी न असार।
नहीं जाचना सारिखी, लघुता जगत मँझार॥ ४२६॥
दानकलासी दूसरी, दुखहरणी नहिं कोइ।
ज्ञानकलासी जगतमें, सुखकरणी नहिं होइ॥ ४२७॥
नाहिं क्षुधासी वेदना, व्यापै सबकौं सोइ।
अन्न-पान दानार से, दाता और न होइ॥ ४२८॥
पर दुखहरणी सारिखी, गुरुता और न जानि।
परपीड़ा करणी समा, लघुता कोइ न मानि॥ ४२९॥
शुद्ध पारणामिक समा, और नाहिं परिणाम।
सकल कामना त्याग सो, और न उत्तम काम॥ ४३०॥
धर्मसनेही सारिखा, नाहिं सनेही होइ।
विषैसनेही सारिखा, और कुमित्र न कोइ॥ ४३१॥
सर्व वासना त्यागसी, और न थिरता वीर।
कष्ट न नरक निगोदसे, नहीं मरणसी पीर॥ ४३२॥
राग-काज अभ्यास सो, और न दुरगतिदाय।
जोगाभ्यास अभ्यास सो, और न सिद्धि उपाय॥ ४३३॥
नहीं विराधना सारिखी, पापाचरण कहाहिं।
आराधनसी दूसरी, भवतारक नाहिं॥ ४३४॥
निजस्वरूप आराधना, अचल समाधि स्वरूप।
ता सम शिवसाधन नहीं, यह भाषें जिनभूप॥ ४३५॥

१ [illegible]। २ [illegible]। ३ [illegible]।

मद उनमाद गयंद सो, और न वनगज कोइ ।
क्रूरभाव सो सिंह नहिं, ठग न मदन सो होइ ॥ ४५१ ॥
नहिं अजगर अज्ञान सो, ग्रसै जगतकों जोइ ।
नहिं रक्षक निजध्यान सो, कालहरण है सोइ ॥ ४५२ ॥
थिरचर से (?) नहिं वनचरा, वसे सदा भव माहिं ।
नहिं कंटक क्रोधादि से, दया तिनूंमें नाहिं ॥ ४५३ ॥
विषपहुप न विषयादि से, रहै कुंवासन पूरि ।
नाहिं कुपुत्र कुसूत्र से, ते या वनमें भूरि ॥ ४५४ ॥
पंथ न पावें जगतमें, मुकति तनों जगजंत ।
कोइक पावें ज्ञान निज, सोई लहै भव अंत ॥ ४५५ ॥
नहिं सेरी जिनवानिसी, दरसक गुरु से नाहिं ।
नगर नहीं निरवाण सो, जहाँ संतही जाहिं ॥ ४५६ ॥
नहिं समुद्र संसार सो, अति गंभीर अपार ।
लहर न विषैतरंगसी, मच्छ न जम सो भार ॥ ४५७ ॥
भ्रमण न चहुँगति भ्रमण सो, भरमें जीव अपार ।
पोतं न मुनिव्रत सो महा, करै भवोदधि पार ॥ ४५८ ॥
द्वीप नहीं शिवद्वीप सो, गुन रतननकी रासि ।
तीरथनाथ जिनंद से, सार्थवाह न भासि ॥ ४५९ ॥
अंधकूप नहिं जगत सो, परै तहां तनधार ।
जिन विन काढ़े कौन जन, करिकै करुणा सार ॥ ४६० ॥
नाहिं भवानल सारिखी, दावानल जग माहिं ।
जगत चराचर भस्म कर, यामें संसै नाहिं ॥ ४६१ ॥
जिनगुण अंबुधि शरण ले, ताहि न याको ताप ।
तातें सकल विलाप तजि, सेवौ आप निपाप ॥ ४६२ ॥
नहीं वायु जगवायुसी, जगत उड़ावै जोय ।
काय टापरी वापरी, यापै टिके न कोय ॥ ४६३ ॥
जिनपद परवत आसरो, जो नर पकरै आय ।
सोई यामें ऊवरै, और न कोइ उपाय ॥ ४६४ ॥

---

१ दुर्गंध । २ संसारी जीव । ३ गली । ४ विषय रूपी लहरके समान । ५ नाव । ६ लेवटिया । समुद्र ।

दोहा ।

अब सुनि अहमिंद्रा महा, स्वर्ग ऊपरें जे हि ।
नव ग्रीवक नव अनुदिसा, पंचानुत्तर लेहि ॥ ४७९ ॥
तेईसौं शुभ थान ए, तिनमें चौदा सार ।
नव अनुदिश पंचोत्तरा, ये पावें भवपार ॥ ४८० ॥
सम्यकदृष्टी देव ए, चौदहथान निवास ।
चौदहमें नहिं पंच से, महा सुखनकी रास ॥ ४८१ ॥
पंचनिमें सरवारथी,-सिद्ध नाम है थान ।
सकल स्वर्गको सीस जो, ता सम लोक न आन ॥ ४८२ ॥
एकाभवतारी महा, सरवारथसिधि वास ।
तिन से देव न इन्द्र कोउ, अहमिंद्रा न मकास ॥ ४८३ ॥
कहे देवमें सार ए, तैसें व्रतमें सार ।
शील समान न गुरु कहैं, शील देय भवपार ॥ ४८४ ॥
देव माहिं जे समकिती, देव देव हैं जेहि ।
देव माहिं मिथ्यामती, पसुतें मूरख तेहि ॥ ४८५ ॥
नारकमें जे समकिती, तिन से देव न जांनि ।
तिरजंचनिमें श्राविका, तिन से मिनष न मांनि ॥ ४८६ ॥
मिनषनमें जे अव्रती, अज्ञानी मतिमंद ।
तिन से तिरजंचा नहीं, सेवें विषय सुछंद । ४८७ ॥
मिनषनि माहिं मुनिन्द्र जे, महाव्रती गुणवान ।
तिन से अहमिंद्रा नहीं, ताको सुनहु बखान ॥ ४८८ ॥
थावर नहिं क्रमिकीट से, ते सकलिन्द्री से न ।
पंचेन्द्री नहिं नरन से, नर जु नरेन्द्र जिसे न ॥ ४८९ ॥
महामंडलिक से न नृप, ते अधचक्री से न ।
अधचक्री नहिं चक्रि से, ज्ञानवान गणे से न ॥ ४९० ॥
नाहिं गणेन्द्र जिनेन्द्र से, जे सबके गुरुदेव ।
इंद्र फणिन्द्र नरेन्द्र मुनि, करें सुरासुर सेव ॥ ४९१ ॥
ते जिनेन्द्र हू तप समै, करें सिद्धको ध्यान ।
सिद्धनि सो संसारमें, नाहिं दूसरो आन ॥ ४९२ ॥

१ गणधरके समान ।

वाहन नहीं विमान से, फिरें गगनके माहिं ।
नाहिं विमान जु ज्ञान से, जा करि शिवपुर जाहिं ॥ ५०८ ॥
हीन दीन अति तुच्छ तन, नहिं निगोदिया तुल्य ।
सरवारथसिधि देव से, भववासी नहिं कुल्य ॥ ५०९ ॥
दीरघदेह न मच्छ से, सहसर जोजन देह ।
चौइन्द्री नहिं भ्रमर से, जोजन एक गनेह ॥ ५१० ॥
कानखजुरया से नहीं, तेइन्द्री त्रय कोस ।
बेइन्द्री नहीं संख से, तन अड़तालिस कोस ॥ ५११ ॥
एकेन्द्री नहिं कमळ से, सहसर जोजन एक ।
सब परि करुणा राखिवौ, इह जिनधर्म विवेक ॥ ५१२ ॥
धात न कनक समान सो, काई लगै न जाहि ।
सोहु न चेतन धात सो, नहिं कवहूँ विनसाहि ॥ ५१३ ॥
पारस से पाषाण नहिं, लोहा कनक कराय ।
पारसनाथ समान कोउ, पारस नाहिं कहाय ॥ ५१४ ॥
ध्यावौ पारसप्रभु महा, वसै सदा जो पास ।
राशि सकल गुणरतनकी, काटै कर्म जु पासि[1] ॥ ५१५ ॥
चातुरमासिक सारिखे, उतपत जीवन आन ।
व्रती जती से नाहिं कोउ, गमन तजें गुणवान ॥ ५१६ ॥
जिनकल्याणक क्षेत्र से, और न तीरथ जान ।
तेहु न निज तीरथ जिसे, इह निश्चै कर मान ॥ ५१७ ॥
निजतीरथ निजक्षेत्र है, असंख्यात परदेश ।
तहां विराजै आतमा, जानै भाव असेस ॥ ५१८ ॥
अष्टमि चउदसि सारिखी, परवी और न जानि ।
अष्टाह्निक से लोकमें, पर्व न कोइ प्रवानि ॥ ५१९ ॥
नंदीसुर सो धाम नहिं, जहां हरष अति होय ।
नंदादिक वापीनसी, नहीं वापिका कोय ॥ ५२० ॥
नारक से क्रोधी नहीं, शठ नर सो न गुमान ।
विकल न पशुगण सारिखे, लोभ न दंभ समान ॥ ५२१ ॥
नारक से न कुरूप कोउ, देवनि से न सुरूप ।
नर से धर्माधर नहीं, नहिं पशु से बहुरूप ॥ ५२२ ॥

1 फांसी ।

अलस्या से वेइन्द्रिया, और न अल्प सरीर ।
नहीं कुंथिया से अल्प, ते इन्द्रिय तन वीर ॥ ५३८ ॥
काणमच्छिका से न तुछ, चौइन्द्रिय तन धार ।
तन्दुलमच्छ समान तुछ, पंचेन्द्री न विचार ॥ ५३९ ॥
चुगली-चारी अति बुरी, गोरी जारी ताप ।
चोरी चमचोरी तथा, जूवा आमिष पाप ॥ ५४० ॥
मदिरा मृगया मांगना, पर महिलानूं प्रीति ।
परद्रोह परपंच अर, पाखंडादि प्रतीति ॥ ५४१ ॥
तजौ अभक्षण भक्ष्य अरु, तजौ अगम्यागम्य ।
तजौ विपर्ज भाव सहु, त्याग हु पाप अरम्य ॥ ५४२ ॥
इनसौं और न कुक्रिया, नरक निगोद प्रदाय ।
सकल कुक्रिया-त्याग सो, और न ज्ञान उपाय ॥ ५४३ ॥
उज्जल जल गाल्यौ उचित, सोध्यौं अन्न अडंक ।
ता सम भक्ष्य न लोकमें, भाषे विबुध निसंक ॥ ५४४ ॥
मद्य मांस मधु मांखणा, ऊमरादि फल निंदि ।
इन से अभक्ष न लोकमें, निंदै नर जगवंदि ॥ ५४५ ॥
वेस्या दासी परत्रिया तिनसौं धारै प्रीति ।
एहि अगम्यागम्य है, या सम नाहि अनीति ॥ ५४६ ॥
होय कलंकी सारसे, नाहि अनीती कोय ।
धर्मी चक्री सारिखे, नीतिवान नहि जोय ॥ ५४७ ॥
गज नहि कोइ गजेंद्र से, मृग मृगेंद्र से नाहि ।
खग नहि कोइ खगेंद्र से, जे अति जोर धराहि ॥ ५४८ ॥
वादित्र न कोइ वीनसे, सुरपति से न प्रवीन ।
बाण न कोइ अमोघ से, हिनक से न मलीन ॥ ५४९ ॥
असन न पान पियूष से, बिसन न धून समान ।
षस्त्राभरण न लोकमें देवलोक सम आन ॥ ५५० ॥
पानिनी न महेंद्र से, पंच कल्याणक माहि ।
सदा बजावै राग धरि, गावैं सुरै नाहि ॥ ५५१ ॥

१ तिष्कर । २ भैस्म । ३ अद्भुत ।

अपने अर तियके व्रता, सब ही पालैं निरव्रता ।
या विधि निजनारी सेवै, परि मनमें ऐसें वेदै ॥ ५९४ ॥
कब तजिहौं काम विकारा, इह कर्म महा दुख भारा ।
यामें हिंसा बहु होवै, या कर्म करै सुभ खोवै ॥ ५९५ ॥
जैसें नाली तिल भरिये, रंच हु खाली नहिं धरिये ।
तातौं कीलो ता माहैं, लोहेको संसै नाहैं ॥ ५९६ ॥
घालें तिल भस्म जु होई, यह परतछि देखौ कोई ।
तैसे ही लिंग करि जीवा, नासैं भग माहिं अतीवा ॥ ५९७ ॥
तातैं यह मैथुन निंद्या, याकौं त्यागैं जगवंद्या ।
धन धन्निभाग जाको है, जो मैथुनतैं जु वच्यौ है ॥ ५९८ ॥
जे बाल ब्रह्मव्रत धारैं, आजन्म न मैथुन कारैं ।
तिनके चरननकी भक्ती, दे भव्यजीवकूं मुक्ती ॥ ५९९ ॥
हमहू अैसे कब होहैं, तजि नारी व्रत करि सोहैं ।
या मैथुनमें न भलाई, परतछ दीखै अघ भाई ॥ ६०० ॥
अपनीहू नारी त्यागैं, जब जिनवरके मत लागैं ।
यह देह हु अपनी नाहीं, चेतन बैठौ जा माहीं ॥ ६०१ ॥
तौ नारी कैसें अपनी, यह गुरु आज्ञा उर खपनी ।
या विधि चितवै मन माहीं, कब घर तजि वनकूं जाहीं ॥ ६०२ ॥
जबलौं बलवान जु मोहा, तबलौं इह मनमथ द्रोहा ।
छांडै नहिं हमसौं पापी, तातैं व्याही त्रिय थापी ॥ ६०३ ॥
जब हम बलवान जु होहैं, मारैं मनमथ अर मोहै ।
असमर्थो नारी राखै, समरथ आतमरस चाखै ॥ ६०४ ॥
यह भावन नित भावंतो, घर माहिं उदास रहंतो ।
जैसें परघर पाहुणियो, तैसें ये श्रावक गिणियो ॥ ६०५ ॥
वह तौ घर पहुंचौ चाहै, यह शिवपुरकौं जु उमाहै ।
अति भाव उदासी जाको, निज चेतनमें चित ताको ॥ ६०६ ॥
छांडै सब राग रु दोपा, धारै सामायक पोषा ।
कबहू न रत्त है घरमें, है मगन त्रियासौं न रमें ॥ ६०७ ॥
मुख आदि विकारा जे हैं, छांडै नर ज्ञानी ते हैं ।
इह त्रियसेवनविधि भाखी, विन पाणिग्रह नहिं राखी ॥ ६०८ ॥

बेसरी छंद ।

जगमें धन वल्लभ है भाई, धनहूतें जीतव अधिकाई ।
जीतवतें लज्जा है वल्लभ, लज्जातें नारी नर दुल्लभ ॥ ६२३ ॥
जे पापी परदारा सेवें, ते बहुतनिकी लज्जा लेवें ।
वैर बढ़ै जु बहुसे ती वीरा, परदारा सेवें नहिं धीरा ॥ ६२४ ॥
धन जीतव लज्जा जस माना, सर्व जाय या करि व्रत ज्ञाना ।
कुलकों लागै बड़ो कलंका, या अघकों निंदें अकलंका ॥ ६२५ ॥
परनारीरत पापिनकों जे, दस वेगा उपजें मनसों जे ।
चिंता अर देखन अभिलाषा, फुनि निसास नाँखन भी भाषा ॥६२६॥
कामज्वर होवे परकासा, उपजे दाह महादुख भासा ।
भोजनकी रुचि रहै न कोई, बहुरि महामूरछा होई ॥ ६२७ ॥
तथा होय सो अति उनमत्ता, अंध महा अविवेक प्रमत्ता ।
जानों प्राण रहनको संसै, अथवा छूटैं प्राण निसंसै ॥ ६२८ ॥
कहे वेग ए दश दुखदाई, विभचारीके उपजें भाई ।
कौलग वर्णन कीजे मित्रा, परदारा सेवें न पवित्रा ॥ ६२९ ॥
इही पाप है मेरु समाना, और पाप है सरस्यूं दाना ।
याके तुल्य कुकर्म न कोई, सर्व दोषको मूल जु होई ॥ ६३० ॥
नर तेही परदारा त्यागें, नारी जे पर पुरुष न लागें ।
सर्वोत्तम वह नारि जु भाई, ब्रह्मचर्य्य आजन्म धराई ॥ ६३१ ॥
व्याह करें नहिं जो गुणवन्ती, विषय भाव त्यागें गुणवन्ती ।
ब्राह्मी सुन्दरि ऋषभ सुता जे, रहित विकार सुधर्म रता जे ॥ ६३२ ॥
चेटक पुत्री चंदनबाला, ब्रह्मचारिणी ब्रत विशाला ।
बहुरि अनन्तमती अति शुद्धा, वणिकसुता व्रत शील प्रबुद्धा ॥ ६३३ ॥
इत्यादिक जो कीर्ति वितारें, निरमल, निरदूषण, व्रत पालें ।
महासती जाके न विकारी, विषयन ऊपरि भाव न धारी ॥ ६३४ ॥
आतम तत्त्व लख्यौ निरवेदा, काम कल्पना सर्व निषेदा ।
पुरुष लखें सहु सुत अरु भाई, पिता समाना रंच न काई ॥ ६३५ ॥
धारें पालें ब्रह्मव्रत शुद्धा, गुरुप्रसाद भई प्रतिबुद्धा ।
ऐसी समरथ नारी पावें, तो पातिव्रत व्रत धरावें ॥ ६३६ ॥
मात पिताकी आज्ञा लेती, एक पुरुष धारें विधि सेती ।
पाणिग्रहण कर सो कुलवन्ती, पतिकी सेव करें गुणवन्ती ॥ ६३७ ॥

और न सिंगारादिक गाव, केवल जिनपदसों उर लाव ।
नारी-विषयनको संकलपा, तजिवो बुधको सर्व विकलपा ॥ ६५२ ॥
अंग उपंग निरखनों नाहीं, जो निरखे तो दोष धराहीं ।
सतकारादिक नारीजनसों, करनों नाहीं मन-वच-तनसों ॥ ६५३ ॥
पूरव भोग-विलास न चितवौ, अर आगामी वांछा हरिवौ ।
सुपने हू नहिं मनमथ कर्मा, ए दस दोष तजै व्रत धर्मा ॥ ६५४ ॥
व्रत नहीं शील बराबर कोई, जिनशासनकी आज्ञा होई ।

उक्तं च श्रीज्ञानार्णवमध्ये

आद्यं शरीरसंस्कारो द्वितीयं वृष्यसेवनम् ।
तौर्यत्रिकं तृतीयं स्यात्संसर्गस्तुर्यमिष्यते ॥ १ ॥
योषिद्विषयसंकल्पं पंचमं परिकीर्तितं ।
तदंगवीक्षणं षष्ठं सत्कारः सप्तमो मतः ॥ २ ॥
पूर्वानुभूतसंभोगः स्मरणं स्यात्तदष्टमम् ।
नवमे भावनी चिंता दशमे वस्तिमोक्षणं ॥ ३ ॥

कवित्त ।

तिय-थल-वासि प्रेमरुचि निरखन, देखि रीझ भाषत मधु वैन ।
पूरव भोग केलिरस चितवन, गरु व अहार लेत चित चैन ।
करि सुचि तन सिंगार बनावत, तिय परजंक मध्य सुखसैन ।
मनमथकथा उदरभरि भोजन, ए नव वाड़ि जानि मत जैन ॥ ६५५ ॥

दोहा

अतीचार सुनि पांच अब, सुनि करि तजि वर वीर ।
जब चौथो व्रत शुद्ध है, इह भाषें मुनि धीर ॥ ६५६ ॥
ब्याह-सगाई पारकी, किरिया अव्रतपोष ।
शीलवंत नर नहिं करे, जिन त्यागे सहु दोष ॥ ६५७ ॥
इत्वरिका कुलटा त्रिया, ताकी है द्वै जाति ।
परिग्रहीता एक है, जाके सामिल स्वाति ॥ ६५८ ॥
अपरिग्रहीता दूसरी, जाके स्वामि न कोय ।
ए इत्वरिका द्वै विधा, पर-पुरुषा-रत होय ॥ ६५९ ॥
जिनसों रहनों दूर अति, तिनको संग तजेय ।
तिनसों संभाषण नहिं, तजै जनम सुधरेय ॥ ६६० ॥

सर्व गुणां हैं शीलमें, अरु कुशीलमें दोष ।
नाहिं कुशील समान कोउ, और पापको पोष ॥ ६७६ ॥
इन दोउनके गुण अगुण, कहत न आवै थाह ।
जानें श्री जिनरायजू, केवलरूप अथाह ॥ ६७७ ॥
महिमा शील महंतकी, कहैं महा गणधार ।
भाषै श्रीजिन भारती, रटैं साधु भव तार ॥ ६७८ ॥
सरवारथसिधिके महा, अहमिन्द्रा परवीन ।
गावें गुण व्रत शीलके, जे अनुभव रसलीन ॥ ६७९ ॥
कथें कीर्ति इन्द्रादिका, जपैं सुजस जोगिन्द्र ।
लौकान्तिक वरणन करें, रटैं नरिन्द्र फणीन्द्र ॥ ६८० ॥
चन्द सूर सुर असुर खग, महिमा शील करेय ।
सूरि संत अध्यापका, मन वच काय धरेय ॥ ६८१ ॥
हमसे अलपमती कहा, कैसें गुण वरणेह ।
नमो नमो व्रत शीलकों, रहै ऋषी शरणेह ॥ ६८२ ॥
दया सत्य अस्तेय अर, शीलै करि परिणाम ।
भाषों पंचम व्रत जो, परिग्रहत्याग सुनाम ॥ ६८३ ॥

इति चतुर्थव्रतनिरूपण ।

इन चारनि विन ना हुवै, परिग्रहको परिहार ।
परिग्रहके परिहार विन, नहिं पावै भवपार ॥ ६८४ ॥
मुनिकों सर्वहि त्यागवौ, अंतर बाहिज संग ।
धर्म अकिंचन धारिवौ, करिवौ तृष्णाभंग ॥ ६८५ ॥
अपने आतमभाव विनु, जो पररूपा वस्तु ।
सो परिग्रह भाषौ सुधी, ताको त्याग प्रसस्त ॥ ६८६ ॥
सर्व भेद चउवीस हैं, चउदस अर दस भेलि ।
अन्तर बाहिज संग ये, दुरगति फलकी वेलि ॥ ६८७ ॥
परिग्रह द्वैविध त्यागिये, तब लहिये निज भाव ।
ब्रह्मज्ञानके शत्रु ये, नर्क निगोद उपाय ॥ ६८८ ॥
अंतरंग परिग्रहतनें, भेद चतुर्दस जान ।
मिथ्यात्वादिक जो सबै, जिन आज्ञा उर आन ॥ ६८९ ॥

जीव दयाके कारणें, तजौ बहुत आंरम्भ ।
परिग्रहको परिमाण करि, तजो सकल ही दम्भ ॥ ७०५ ॥
लोभ लहरि मेटी जिनौं, धरयौ धर्म-संतोष ।
ते श्रावक निरदोष हैं, नहीं पापको पोष ॥ ७०६ ॥
क्षेत्र आदि दस संगको, कियौ तिनैं परिमाण ।
राख्यौ परिग्रह अलप ही, तिन सम और न जाण ॥ ७०७ ॥
कह्यौ परिग्रह दस विधा, वहिरंगा जे वीर ।
तिनके भेद सुनू भया, भाखैं मुनिवर धीर ॥ ७०८ ॥

चौपई ।

खेत्र परिग्रह खेत वखान, जहाँ ऊपजै धान्य निधान ।
वास्तु कहावै रहवा तना, मन्दिर हाट नौहरा वना ॥ ७०९ ॥
हस्ती घोटक ऊंट र आदि, गाय वलध माहिषी इत्यादि ।
होय राखणों जो तिरजंच, चौपद परिग्रह जानि प्रपंच ॥ ७१० ॥
द्विपद परिग्रह दासी दास, पुत्र कलत्रादिक परकास ।
धान्य कहावै गेहूं आदि, जीवन जनको अन्न अनादि ॥ ७११ ॥
धनकनकादिक सवही धात, चिन्तामणि आदिक मणि जात ।
चोवा चन्दन अगर सुगन्ध, अतर अगरजा आदि प्रवन्ध । ७१२ ॥
तेल फुलेल घृतादिक जेह, वहुरि वस्त्र सव भांति कहेह ।
ये सव कुप्य परिग्रह कहे, संसारी जीवनिनैं गहे ॥ ७१३ ॥
भाजन नाम जु वासन होय, धातु पषाण काठके कोय ।
माटी आदि कहाँ लग कहैं, साधन भाजनके वहु गहैं ॥ ७१४ ॥
आसन बैसनके वहु जान, सिंघासन प्रमुखा परवान ॥
गद्दी गिलम आदि जेतेक, त्यागौ परिग्रह धारि विवेक ॥ ७१५ ॥
सज्या नाम सेझको कह्यौ, भूमिसयन मुनिराजनि गह्यौ ॥
ए दसधा परिग्रह द्वै रूप, केइक जड़ केइक चिद्रूप ॥ ७१६ ॥
द्विपद चउसपद आदि सजीव, रतन धातु वस्त्रादि अजीव ।
अपने आतमतैं सब भिन्न, परिग्रहतैं हैं खेद जु खिन्न ॥ ७१७ ॥
हैं परिग्रह चिंताके धाम, इनको त्याग लहैं शिवधाम ।
जिनवर चक्री हलधर धीर, कामदेव आदिक वर वीर ॥ ७१८ ॥

धन्य धन्य धरनह जे, याकू तुच्छ गिनेय।
माया ममता मूरछा, सर्वारंभ तजेय ॥ ७३३ ॥
यही भावना भावतो, भविजन रहै उदास।
मनमें मुनिव्रतकी लगन, सो श्रावक जिनदास ॥ ७३४ ॥
बहुरि विचारै सो सुधी, अगनि धरै गुण शीत।
जो कदापि तौहु न करै, परिग्रहवान अभीत ॥ ७३५ ॥
कालकूट जो अमृता, होइ दैवसंजोग।
नाहिं तथापि सुख होय पै, इन्द्रिनके रसभोग ॥ ७३६ ॥
विषयनिमें जे राचिया, ते रुलि हैं भव माहिं।
सुख है आतमज्ञानमें, विषय माहिं सुख नाहिं ॥ ७३७ ॥
थिर है तड़ित प्रकाश जो, तौहु देह थिर नाहिं।
देह नेह करिबौ वृथा, यह चितवै मन मांहि ॥ ७३८ ॥
इन्द्रजाल जो सत्य है, दैवजोग परवान।
तौ पनि संसारी जना, नाहिं कदे सुखवान ॥ ७३९ ॥
चहुँगतिमें नहिं रम्यता, रम्य आतमाराम।
जाके अनुभवते सदा, है पंचमगति धाम ॥ ७४० ॥
इह विचार जाके भयौ, देहहु अपनी नाहिं।
सो कैसे परपंच करि, डूबै परिग्रह माहिं ॥ ७४१ ॥

छंद १३ वां।

है गय पायक आदि परिग्रह, पुन्य उदै गृह होय विभौ अति।
पाय विभौ फुनि मोहित होत, सरूप विसारि करै परसौं रति।
नारहि पोषन कारण काज, रच्यौ बहु आरंभ बाँधत दुर्गति।
ज्ञानि करै इनहूं करबहू मन, दान बहै फुनि देहहु यो मति ॥ ७४२ ॥
नाहिं संतोष समान जु आन है, श्रीभगवान बखान सुधर्मा।
है सुखरूप अनूप इहै गुण, कारण ज्ञान हरै सब कर्मा।
पापनिको यह बाप जु लोभ, करै अतिक्षोभ धरै अति मर्मा।
धारि संतोष लहै गुणकोष, तजै सब दोष लहै निजधर्मा ॥ ७४३ ॥
रंक सबै जग राव रिषीसुर, जो हि धरै शुभ शील संतोषा।
सो हि लहै निज आतम भेद, करै अघ छेद हरै दुख दोषा।

१ बिजलीका प्रकाश। २ बेढ़ा।

परिग्रहको परमाण करि, जयकुमार गुणधार ।
सुर-नर कर पूजित भयौ, लयौ भवोदधिपार ॥ ७५६ ॥
परिग्रहकी तृष्णा करै, लुब्धदत्त गुणवीत ।
गयौ दुरगती दुख लहै, जो सुनि ज्यों समझु नवनीत ॥ ७
करै जु संख्या संगकी, हरै देहतें नेह ।
अति न भ्रमावे नर पशू, गिनै आपसम तेह ॥ ७५८ ॥
बोझ बहुत नहिं लादिबौ, करनों बहुत न लोभ ।
अति संग्रह तजिबौ सदा, करनों बहुत न क्षोभ ॥ ७५९ ।
अति विस्मय नहिं धारिबौ, रहनों निःसन्देह ।
झूठी माया जगतकी, अतिरज नाहिं सनेह ॥ ७६० ॥
परिग्रहसंख्याव्रतके, अतीचार हैं पंच ।
तिनकूं त्यागें जे व्रती, तिनके पाप न रंच ॥ ७६१ ॥
क्षेत्र वास्तु संख्या करी, ताकौं करै उलंघ ।
अतीचार है प्रथम यह, भाषै चउविधि संघ ॥ ७६२ ॥
काहु प्रकारे भूल्वि करि, जोहि उलंघै नेम ।
अतीचार ताकौं लगै, भाषैं पण्डित एम ॥ ७६३ ॥
द्विपद चतुसपद संगको, करि प्रमाण जो वीर ।
अभिलाषा अधिकी धरै, सो न लहै भवतीर ॥ ७६४ ॥
अतीचार दूजो इहै, सुनि तीजो अघरास ।
धन धान्यादिक वस्तुको, करि प्रमाण गुरु पास ॥ ७६५ ॥
फिर संकोचि सकै नहीं, मन दौरावै मूढ़ ।
सो न लहै व्रतशुद्धता, होय न ध्यानारूढ़ ॥ ७६६ ॥
इम राख्यौ परिग्रह अल्प, सरै न एते माहिं ।
ऐसे विकल्प जो करै, व्रतवान सो नाहिं ॥ ७६७ ॥
कुप्य भाण्ड परिग्रह तनों, करि प्रमाण मन धारि ।
तिन माहिं मेटै नहीं, सो चौथो अतिचार ॥ ७६८ ॥
शयन नाम सय्या तनों, आसन हूद विधि होय ।
थिर आसन पर आसना, करै प्रमाण जु कोय ॥ ७६९ ॥
पुनि अधिको अभिलाष धरि, लावै अव्रती दोष ।
अतीचार सो पांचमो, रोकै मारग मोष ॥ ७७० ॥

दया सत्य असतेय अर, ब्रह्मचर्य संतोष ।
इन पांचनिकों करि भणति, छट्टम व्रत निरदोष ॥ ७८६ ॥
भाषों दिसि परिमाण शुभ, लोभ नासिवे काज ।
जीवदयाके कारणै, उर धरि श्री जिनराज ॥ ७८७ ॥
द्वादश व्रतमें पंच व्रत, सप्त शील परवानि ।
सप्त शीलमें तीन गुण, चउ शिक्षाव्रत जानि ॥ ७८८ ॥
जैसे कोट जु नग्रके, रक्षाकारण होय ।
तैसें व्रतरक्षा निमित्त, शील सप्त ये जोय ॥ ७८९ ॥
वरत शील धारें सुधी, ते पावें सुखराशि ।
कहे व्रत अब शीलके, भेद कहों परकाशि ॥ ७९० ॥
पहलो गुणव्रत गुणमई, छट्टो व्रत सौ जानि ।
दसों दिशा परमाण करि, श्रीजिनआज्ञा मानि ॥ ७९१ ॥
तीन गुणव्रतमें प्रथम, दिग्व्रत कयो जिनेश ।
ताहि धरें श्रावकव्रती, त्यागें दोष असेस ॥ ७९२ ॥
लोभादिक नाशन निमित, परिग्रहको परिमाण ।
कीयो तैसें ही करौ, दिशि परमान सुजाण ॥ ७९३ ॥

वेसरी छंद ।

पूरव आदि दिशा चउ जानौं, ईशानादि विदिशि चउ मानौं ।
अध उरध मिलि दस दिशि होई, करै प्रमाण व्रती है सोई ॥ ७९४ ॥
सीलवान व्रत धारक भाई, जाके दरसनतें अघ जाई ।
या दिशिकों एतोही जाऊं, आगें कबहु न पाँव धराऊँ ॥ ७९५ ॥
या विधिसों जु दिशाको नेमा, करै सुबुधि धरि व्रतसों प्रेमा ।
मरजादा न उलंघै जोई, दिग्व्रत धारक कहिये सोई ॥ ७९६ ॥
दसों दिशाकी संख्या धारै, जिती दूरलौं गमन विचारै ।
आगें गये लाभ है भारी, तौपनि जाय न दिगव्रत धारी ॥ ७९७ ॥
संतोषी समभावी होई, धनकूं गिनैं धूरिसम सोई ।
गमनागमन तज्यौ बहु जानैं, दया धर्म धार्यो उर तानैं ॥ ७९८ ॥
लगै न हिंसा तिनको अविकी, त्यागी जिन तृष्णा धननिधिकी ।
कारण हेत चालनो परई, तौ प्रमाण माफिक पग धरई ॥ ७९९ ॥

---

१ गुनव्रत ।

अब सुनि व्रत सातमो भाई, जो दूजो गुणव्रत कहाई ।
दिशा तणों कीयों परिमाणा, तामें देश प्रमाण बखाणा ॥ ८१५ ॥
देश नगर अर गांव इत्यादी, अथवा पाटक हाट जु आदी ।
पाटक कहिए अर्थ जु ग्रामा, करें प्रमाण व्रती गुण धामा ॥ ८१६ ॥
जिन देशनिमें धर्म जु नाहीं, जाय नहीं तिन देशनि माहीं ।
जब वह बहु देशनितें छूटे, तब यासों अति लोभ जु टूटे ८१७ ॥
बहु हिंसा आरंभ निवर्त्यो, जीवदया मन माहि प्रवर्त्यो ।
दिश अरु देशनिको जु प्रमाणा, लोभ नाशने निमित्त बखाना ॥ ८१८ ॥
जिनवर मुनिवर अर जिन धामा, जिनप्रतिमा अर तीरथठामा ।
यात्राकाज गमन निरदोषा, दीप अढाईलों व्रतपोषा ॥ ८१९ ॥
अतीचार पांचों तजि धीरा, जाकरि देश व्रत है धीरा ।
चित पसरत रोकनके कारन, मन वच तन मरजादा धारन ॥ ८२० ॥
कबहू नाहिं उलंघि सु जाई, अर ह्यांतें आसा न धराई ।
प्रेष्य नाम है सेवकको जी, नाहि पठावौ जो अधिको जी ॥ ८२१ ॥
वस्तु भेजिवौ लोभनिमित्ता, प्रेष्यप्रयोग दोष है मित्ता ।
तातें जेतो देश जु राख्यौ, भृत्य भेजिवो ह्यांतक भाख्यौ ॥ ८२२ ॥
आगें वस्तु पठैवौ नाहीं, इह बात धारौ उरमाहीं ।
दूजो दोष आनयन त्यागें, तब हि व्रत्त विधानहि लागें ॥ ८२३ ॥
परक्षेत्र जु तें वस्तु मँगावें, सो गुणव्रतको दूषण लावें ।
जो परमाण बाहिरा ठौरा, सो परक्षेत्र कहैं जगमौरा ॥ ८२४ ॥
तीजो दोष शब्दविनिपाता, ताको भेद सुनों तुम भ्राता ।
जाय नहीं परि शब्द सुनावे, सो निरदूषण व्रत न पावे ॥ ८२५ ॥
चौथो दूषण रूपनिपाता, रूप दिखावण जोगि न बाता ।
पंचम पुद्गलक्षेप कहावे, कंकर आदिक जोहि वगावे ॥ ८२६ ॥

भावार्थ–दिशा अर देशको जावजीव नियम कियो छै, तीहूमें वर्ष छमासी चौमासी दुमासी मासी पाखी नेम धारयों छै, तीमें भी निति नेम करें छै । सो निति नेम मरजादामें क्षेत्र निपट थोड़ो राख्यौ सो गमन तो मरजादा बाहिर क्षेत्रमें न करें परि हेलो मारि शब्द सुनावै, अथवा जिह तरफ जिह प्राणीसों प्रयोजन होय तिह तरफ झांकि झरोकादिकमें बैठि करि तिह प्राणीनें अपना रूप दिखाय प्रयोजन जनावें अथवा कंकर इत्यादि बगाय पैलाने मतलब जनावे सो अतीचार लगाय व्रतने मलीन करें ।

मंजारादिक दुष्ट सुभावा, मांस अहारी मलिन कुभावा ।
तिनको धारन कबहु न करनों, जीवनिकी हिंसातैं डरनों ॥ ८४२ ॥
नाखिया पखिया हिंसक जेही, धर्मवंत पालै नहिं तेही ।
आयुधको व्यापार न कोई, जाकरि जीवनको वध होई ॥ ८४३ ॥
सीसा लोह लाख साबुन ए, बनिजजोग नहिं अघकारन ए ।
जेती वस्तु सदोष बताई, तिनको बनिज त्यागवौ भाई ॥ ८४४ ॥
धान पान मिष्टादि रसादिक, लवण हींग घृत तेल इत्यादिक ।
दल फल तृण पहुपादिक कंदा, मधु मादिक विणिजे मतिमंदा ॥ ८४५ ॥
अतर फुलेल सुगंध समस्ता, इनको विणज न होइ प्रशस्ता ।
तथा अजोग्य मोम हरतारे, हिंसाकारन उद्यम टारे ॥ ८४६ ॥
वध बंधनके कारिज जेते, त्यागहु पाप बिणज तुम तेते ।
पसु पंखी नर नारी भाई, इनको विणज महा दुखदाई ॥ ८४७ ॥
काष्टादिकको विणज न करै, धर्म अहिंसा उरमैं धरै ।
ए सब कुविणज छांडै जोई, धरम सरावक धारै सोई ॥ ८४८ ॥
मूलगुणनिमैं निंदे एई, अष्टम व्रतमैं निंदे तेई ।
बार बार यह विणज जु निंद्या, इनकूं त्यागैं ते नर वंद्या ॥ ८४९ ॥
सुवरण रूपा रतन प्रसस्ता, रूई कपरा आदि सुवस्ता ।
विणज करै तौ ए करि मित्रा, सर्व तजौ अति ही अपवित्रा ॥ ८५० ॥
सुनों पांचमो और अनर्था, जे शठ सुनहिं मिथ्यामत अर्था ।
इह कुसूत्र सुणवौ अघ मोटा, और पाप सब यातैं छोटा ॥ ८५१ ॥
पाप सकल उपजैं या सेती, उपजै कुबुधि जगतमैं तेती ।
अंतिम बात सुनों मति भाई, वसीकरण आदिक दुखदाई ॥ ८५२ ॥
वसीकरण मनको धरि संता, मन जीत्यां है ज्ञान अनंता ।
कामकथा सुनिवौ नहिं कबहू, भूलैं धरैं चैन धरि अबहू ॥ ८५३ ॥
परनिंदा सुनिवौ अति पापा, निंदक लहै नरक संतापा ।
कबहु न करिवौ राग अलापा, दोष त्यागिवौ होय निरापा ॥ ८५४ ॥
विकथा करिवौ जोगि न वीरा, धर्मकथा सुनिवौ सुभ धीरा ।
आलबाल बकिवौ नहिं जोग्या, गालि कादिवौ महा अजोग्या ॥ ८५५ ॥
बिना जैनवानी सुखदानी, और निम धरिवौ नहिं मानी ।
केवलि श्रुतकेवलिकी आग्या, माथैं लागैं धर्म सुभाग्या ॥ ८५६ ॥

है मौखर्य चतुर्थो दोषा, ताहि तजैं श्रावक व्रतपोषा ।
जो वाचालपनाको भावा, सो मौखर्य कहैं मुनिरावा ॥ ८७२ ॥
विना विचार्यां अधिको बकिवौ, झूटे वाकजालमें छकिवौ ।
असमीक्षित अधिकर्ण जु वीरा, अतीचार पंचम तजि धीरा ॥ ८७३ ॥
विन देख्यौं विन पूछ्यौं कोई, घट्टी मूसल उखली जोई ।
कछु भी उपकरणा बिन देख्या, विन पूंछ्यां गृहिवौं न अलेखा ॥ ८७४ ॥
तब हिंसा हरिहैं परवीना, हिंसातुल्य अनर्थ न लीना ।
ए सब अष्टम व्रतके दोषा, करैं जु पापी व्रतकों सोखा ॥ ८७५ ॥
इन तजिसी व्रत निर्मल होई, तातैं तजैं धन्य हैं सोई ।
गुणव्रत काहेतैं जु कहावे, ताको अर्थ सुनों मनलावे ॥ ८७६ ॥
पंच अणुव्रतकों गुणकारी, तातैं गुणव्रत नाम जु धारी ।
जैसें नग्रतनें है कोटा, तैसें व्रत रक्षक ए मोटा ॥ ८७७ ॥
क्षेत्रनि होय वाड़ि जो जैसें, पंचनिके ए तीनूं तैसें ।
अब सुनि चउ शिक्षाव्रत मित्रा, जिन करि होवे अणु पवित्रा ॥ ८७८ ॥
अणुनिकौं संख्यादायक ए, ज्ञानमूल तप व्रत नायक ए ।
नवमो व्रत पहिलो सिक्षाव्रत, धारहु चित धीरे धारहु अणुव्रत ॥ ८७९ ॥
सामायक है नाम जु ताको, धारन करैं सुधीजन याकों ।
सामायक शिवदायक होई, या सम नाहिं क्रिया निधि कोई ॥ ८८० ॥

दोहा ।

प्रथम हि सातों शुद्धता, भाषों श्रुत अनुसार ।
जिन करि सामायक विमल,-होय महा अविकार ॥ ८८१ ॥
क्षेत्र काल आसन विनय, मन वच काय गनेहु ।
सामायककी शुद्धता, सात चित्त धरि लेहु ॥ ८८२ ॥
जहां शब्द कलकल नहीं, बहुजनको न मिलाप ।
दंसादिक प्राणी नहीं, ता क्षेत्र करि जाप ॥ ८८३ ॥
क्षेत्र शुद्धता इह कही, अब सुनि काल विशुद्धि ।
प्रात दुपहरां सांझकों, करैं सदा सद्बुद्धि ॥ ८८४ ॥
षट षट घटिका जो करैं, सो उत्कृष्टी रीति ।
चउ चउ घटिका मध्य है, करैं सुबुद्धि धरि प्रीति ॥ ८८५ ॥

छंद चाल ।

सामायक सो नहिं मित्रा, दूजो व्रत कोइ पवित्रा ।
गृहपतिकों जतिपति तुल्या, करई इह व्रत जु अतुल्या ॥ ९०१ ॥
तसु अतीचार तजि पंचा, जब होइ सामायक संचा ।
मन वच तन दुःप्रणिधाना, तिनको सुनि भेद बखाना ॥ ९०२ ॥
जो पाप काज चिंतवना, सो मनको दूषण गिनना ।
फुनि पाप वचनको कहिवौ, सो वचन व्यतिक्रम लहिवौ ॥ ९०३ ॥
सामायक समये भाई, जो कर-चरणादि चलाई ।
सो तनको दोष बतायो, सतगुरुने ज्ञान दिखायो ॥ ९०४ ॥
चौथो जु अनादर नामा, है अतीचार अघधामा ।
आदर नहिं सामायकको, निश्चै नहिं जिननायकको ॥ ९०५ ॥
समरण अनुपस्थाना है, इह पंचम दोष गिना है ।
ताको सुनि अर्थ विचारा, समरणमें भूलि प्रचारा ॥ ९०६ ॥
नहिं पूरो पाठ पढ़ै जो, परिपूरण नाहिं जपै जो ।
कछुको कछु बोलै बाल, सो सामायक नहिं काल ॥ ९०७ ॥
ए पंच अतीचारा हैं, सामायकमें टारा हैं ।
समता सब जीवन सेती, संजम सुभ भावन लेती ॥ ९०८ ॥
आरति अरु रौद्र जु त्यागा, सो सामायक बड़भागा ।
सामायक धारौ भाई, जाकरि भवपार लहाई ॥ ९०९ ॥

वेसरी छंद ।

क्षमा करौ हमसों सब जीवा, सबसों हमरी क्षमा सदीवा ।
सर्व भूत हैं मित्र हमारे, वैरभाव सबहीसों टारे ॥ ९१० ॥
सदा अकेलो मैं अविनाशी, ज्ञान-सुदर्शनरूप प्रकाशी ।
और सकल जो हैं परभावा, ते सब मोतैं भिन्न लखावा ॥ ९११ ॥
शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध अखंडा, गुण अनंतरूपी परचंडा ।
कर्मबंधतैं रुलै अनादी, भटको भववन माहिं जु वादी ॥ ९१२ ॥
जब देखै अपनों निजरूपा, तब होवो निर्वाणसरूपा ।
या संसार असार मँझारे, एक न सुखकी ठौर करारे ॥ ९१३ ॥
यहै भावना नित भावंतो, लहै आपनों भाव अनंतो ।
अब सुनि पोसहकी विधि भाई, जो दसमो व्रत है सुखदाई ॥ ९१४ ॥

पापका स्थान । २ प्राणी । ३ स्वर्ग ।

कर्म शुभाशुभको जु विपाका, ताहि विचारै नाथ क्षमाका ।
निजकों जानै सबतें भिन्ना, गुण-गुणिकों मानै जु अभिन्ना ॥ ९३० ॥
इम चितवनतें परम सुखी जो, भववासिन सो नाहिं दुखी जो ।
पंच परमपदको अति दासा, इंद्रादिक पदतैंहु उदासा ॥ ९३१ ॥
रात्रि धारनाकी या विधिसों, पूरी करै भरयौ व्रतनिधिसौं ।
पुनि प्रभात संध्या करि धीरा, दिन उपवास ध्यान धरि धीरा ॥ ९३२ ॥
पूरो करै धर्मसों जोई, संध्या करै सांझकों सोई ।
निशि उपवासतनी व्रतधारी, पूरी करै ध्यानसों सारी ॥ ९३३ ॥
करि प्रभात सामायक सुबुधी, जाकै घटमें रंच न कुबुधी ।
पारण दिवस करै जिनपूजा, प्रासुक द्रव्य और नहिं दूजा ॥ ९३४ ॥
अष्ट द्रव्य ले प्रासुक भाई, श्री जिनवरकी पूज रचाई ।
पात्रदान करि दो पहरां जे, करै पारणूं आप घरां जे ॥ ९३५ ॥
ता दिन हू व्रत रीति रचाई, और अहार अल्प जल पाई ।
धारन पारन अरु उपवासा, तीन दिवसलौं वरत निवासा ॥ ९३६ ॥
भूमिशयन शीलव्रत धारै, मन वच तन करि तजै विकारै ।
यह उतकिष्टी पोसह विधि है, या पोसह सम और न निधि है ॥ ९३७ ॥
मध्य जु पोसह बारह पहरा, जघनि आठ पहरा गुण गहरा ।
अतीचार याके तजि पंचा, जाकरि ह्वै सर्व प्रपंचा ॥ ९३८ ॥
बिन देखी बिन पूंछे वस्तू, ताको गहिवौ नाहिं प्रशस्तू ।
गहिवौ अतीचार पहलो है, ताको त्यागनु अतिहि भलो है ॥ ९३९ ॥
बिन देखे बिन पूंछे भाई, संथारे नहिं शयन कराई ।
अतीचार एह तब दूजो, इह आज्ञा धरि जिनवर पूजो ॥ ९४० ॥
बिन देखी बिन पूंछी जागा, मल मूत्रादि न करि बड़भागा ।
करिवौ अतीचार है तीजो, सर्व पाप तजि पोसह लीजो ॥ ९४१ ॥
पर्व दिनाको भूलन चौथो, अतीचार यह सुणतें थोथो ।
करिहै अनादर पंचम दोषा, पोसहको नहिं आदर पोषा ॥ ९४२ ॥
ये पांचो तजियां है पोसा, निरमल निरदूषण अति निरदोसा ।
सामायिक पोसह उपदेशा, जिनवरि भाषे श्रीजिनदेशा ॥ ९४३ ॥
हुनि होनेको गहि अग्याना, इन सम और न दोष अन्याना ।
होय क्षुधितावत है दशा, धन्य धन्य जे करहिं न रोषा ॥ ९४४ ॥

भोगभावमें नाहि भलाई, भोग त्यागि हूजे शिवराई।
अपने गुण-परजाय स्वरूपा, तिनमें रागें रहित विरूपा ॥ ९५९ ॥
वस्त्राभरण न्याहना नारी, खान पान निरदूषण कारी।
इत्यादिक जे अविरुध भोगा, तिनहूंकों जानें ए रोगा ॥ ९६० ॥
जो न सर्वथा तजिया जाई, तौ परमाण करौ बहु भाई।
सर्व त्यागवौ कहैं विवेकी, गृहपतिके कछु इक अविवेकी ॥ ९६१ ॥
तौलग भोगुपभोग हि अल्पा, विधिरूपा धारै अविकल्पा।
मुनिके खान पान इक वारा, सोहू दोष छियालिस टारा ॥ ९६२ ॥
और न एको है जु विकारा, तातें महाव्रती अणगारा।
तजे भोग उपभोग सबै ही, मुनिवरका शुभ विरद फबै ही ॥ ९६३ ॥
शक्तिप्रमाण गृही हू त्यागें, त्याग विना व्रतमें नहिं लागें।
राति दिवसके नेम विचारें, यम-नियमादि धरै अघ टारै ॥ ९६४ ॥
यम कहिये आजन्म जु त्यागा, नियम नाम मरजादा लागा।
यम-नियमादि विना नरदेही, पशुहूतें मूरख गनि एही ॥ ९६५ ॥
खान पान दिनहीकों करनों, रात्रि चतुर्विधऽहार हि तजनों।
नारी सेवै रैनि विषै ही, दिनमें मैथुन नाहि फबै ही ॥ ९६६ ॥
निसि हू नितप्रति करनों नाहीं, त्याग विराग विवेक धराहीं।
नियम माहि करनों नित नेमा, सीम माहि सीमाको प्रेमा ॥ ९६७ ॥
करि प्रमाण भोगनिको भाई, इन्द्रिनिकों नहिं प्रबल कराई।
जैसें फणिकूं दूध जु प्यावौ, गुणकारी नहिं विष उपजावौ ॥ ९६८ ॥
जो तजि भोगभाव अधिकाई, अलपभोग संतोष धराई।
सो बहुनी हिंसातें छूट्यौ, मोहचतें नहिं जाय जु लूट्यौ ॥ ९६९ ॥
दयाभाव उपजो घट ताके, भोगभावकी प्रीति न जाके।
भोगुपभोग पापके मूला, इनकूं सेवैं ते भ्रमभूला ॥ ९७० ॥

दोहा।

हिंसाके कारण कहे, सर्व भोग उपभोग।
इनको त्याग करै सुधी, दयावंत भविलोग ॥ ९७१
सो श्रावक मुनि सारिखा, भोग अरुचि परणाम।
समता धरि सब जीव परि, जिनके क्रोध न का[illegible]
भोगुपभोग प्रमाण सम, नहीं दूसरो और।
तृष्णाको क्षयकार जो, है व्रतनि सिरमोर

तिनकों वहुधा भक्तीतें, श्रद्धादि गुणनि जुक्तीतें।
देवो चउदान सदा जो, सो है व्रत द्वादशमो जो ॥ ९८८ ॥
चउ दान सवोंमें सारा, इनसे नहिं दान अपारा।
भोजन औषध अरु ज्ञाना, फुनि दान अभै परवाना ॥ ९८९ ॥
भोजन-दानहिं धन पावें, औषधि करि रोग न आवें।
श्रुति-दान बोध जु लहाई, इह आज्ञा श्रीजिन गाई ॥ ९९० ॥
अभया है अभय प्रदाता, भाषें प्रभु केवलज्ञाता।
इक भोजनदानें माहीं, चउ दान सधें शक नाहीं ॥ ९९१ ॥
नहिं भूख समान न व्याधी, भव माहीं वड़ी उपाधी।
तातें भोजनसों अन्या, नहिं दूजी औषध धन्या ॥ ९९२ ॥
फुनि भोजनवल करि साधू, करई जिनसूत्र अराधू।
भोजनतें प्राण अधारा, भोजनतें थिरता धारा ॥ ९९३ ॥
तातें चउ दान सधें हैं, दानें करि पुण्य वँधें हैं।
सो सहु वांछा तजि ज्ञानी, होवै दानी गुणखानी ॥ ९९४ ॥
इह भव परभवको भोगा, चाहै नहिं जान हि रोगा।
दे भक्ति करि सुपात्रनकों, निजरूप ज्ञानगात्रनिकों ॥ ९९५ ॥
तिंह रतनत्रयमें संयो, थाप्यौ चउविधिको संयो।
सो पावै भुक्ति विमुक्ती, इह केवलि भाषित उक्ती ॥ ९९६ ॥
नहिं दान समान जु कोई, सव व्रतको मूल जु होई।
.................................., ... ॥ ९९७ ॥
जो भाषे त्रिविधा पात्रा, तिनमें मुनि उत्तम पात्रा।
हैं मध्यम पात्र अणुव्रत्ती, समदृष्टी जघन्य अव्रती ॥ ९९८ ॥
इन तीननिके नव भेदा, भाषें गुरु पाप उछेदा।
उत्तममें तीन प्रकारा, उतकिष्ट मध्य लघु धारा ॥ ९९९ ॥
उत्तम तीर्थंकर साधू, मध्य नु गणधर आराधू।
तिनतें लघु मुनिवर सर्वे, जे तप व्रतमूं नहि गर्वे ॥ १००० ॥
ए त्रिविधि उत्तमा पात्रा, तप संजम शील सुमात्रा।
तिनकी करि भक्ति सु धीरा, उतरै जा करि भवनीरा ॥ १ ॥
मुनिवर होवें निरगंथा, चालैं जिनवरके पंथा।
जे विरकत भव भोगनितें, राग न दोष न लोगनितें ॥ २ ॥

क्रोध जु पाहन रेख सो, पाहन थंभ जु मान ।
माया बांस जु जड़ समा, अति परपंच बखान ॥ १८ ॥
लोभ जु लाखा रंग सो, नर्कजोनि दातार ।
भरमावै जु अनंत भव, प्रथम चौकरी भार ॥ १९ ॥
हलरेखा सम क्रोध है, अस्थि थंभसम मान ।
माया मींढ़ा सींगसी, तिथि षट मास प्रमान ॥ १०२० ॥
रंग आलके सारखो, लोभ, पशूगति दाय ।
इह दूजी है चौकरी, अप्रत्याख्यान कहाय ॥ २१ ॥
रथरेखा सम क्रोध है, काठथंभ सो मान ।
गोमूत्रकी जु वक्रता, ता सम माया जान ॥ २२ ॥
लोभ कसूमारंग सो, नरभव दायक होय ।
दिन पंद्रा लग वासना, तृतीय चौकरी सोइ ॥ २३ ॥
जलरेखा सो रोस है, वेंतलता सो मान ।
माया सुरभी चमरसी, लोभ पतंग समान ॥ २४ ॥
तथा हरिद्रारंग सो, सुरगति दायक जेह ।
एक महूरत वासना, अंत चौकरी लेह ॥ २५ ॥
कही चौकरी चारि ये, च्यार हि गतिकों मूल ।
चारि चौकरी परि हरै, करै करम निरमूल ॥ २६ ॥
मुनिनें तीन जु परि हरीं, धरी सांतता सार ।
चौथी हूको नाश करि, पावै भवजल पार ॥ २७ ॥
सकल कर्मकी प्रकृति सौ, अरु ऊपरि अड़ताल ।
मुनिवर सर्व खपावहीं, जीवनिके रिछपाल ॥ २८ ॥
मुनिपद विन नहिं मोक्ष पद, यह निश्चै उरधारि ।
मुनिराजनकी भक्ति करि, अपनों जन्म सुधारि ॥ २९ ॥

छंद चाल ।

मुनि हैं निर्भय वनवासी, एकान्तवास सुखरासी ।
निज ध्यानी आतमरामा, जगकी संगति नहिं कामा ॥ ३० ॥
जे मुनि रहनेको थाना, वनमें कारहिं मतिवाना ।
ते पावें शिव सुर थाना, यह सूत्रप्रमाण बखाना ॥ ३१ ॥
मुनि लेह अहारइ मित्रा, लघु एक वार कर पात्रा ।

१ पत्थर । २ हड्डी ।

जे मुनिकों भोजन देहीं, ते सुरपुर शिवपुर लेहीं ॥ ३२ ॥
जौ लग नहिं केवलभावा, तौं लग आहार धरावा।
केवल उपजें न अहारा, भागें भवदूषण सारा ॥ ३३ ॥
नहिं भूख तृषादि सबै ही, जब केवल ज्ञान फबैही।
केवल पार्वे जिनराजा, केवल पदले मुनिराजा ॥ ३४ ॥
मुनिकी सेवा सुखकारी, वड़भाग करें उर धारी।
पुसतक मुनिपै ले जावें, मुनि सूत्र अर्थ ते आवें ॥ ३५ ॥
ते पावें आतमज्ञाना, ज्ञानहिं करि है निरवाना।
भेषज भोजनमें युक्ता, मुनिकों लखि रोग मव्यक्ता ॥ ३६ ॥
देवें ते रोग नसावें, कर्मादिक फेरि न आवें।
मुनिके उपसर्ग निवारें, ते आतम भवदीध तारें ॥ ३७ ॥
मुनिराज समान न दूजा, मुनिपद त्रिभुवन करि पूजा।
मुनिराज त्रिवर्णी, होवे, शूदर नहिं मुनिपद जोवै ॥ ३८ ॥
मुनि आर्या एेल महा ए, है सत्री द्विज बणिजाए।
अब मध्यपात्रके भेदा, त्रिविधा सुनि पाप उछेदा ॥ ३९ ॥
उतकिष्ट रु मध्य जघन्या, जिनसे नहिं जगमें अन्या।
पहली पड़िमासों लेई, छट्टीतक श्रावक जेई ॥ ४० ॥
मध्यनिमें अधिन कहावै, गुरु धर्म देव उर लावै।
जे पंचम ठाणें भाई, अणुव्रती नाम धराई ॥ ४१ ॥
पहली पड़िमा धर बुद्धा, सम्यक दरसन गुण शुद्धा।
त्यागें जे सातों बिसना, छांड़ें विषयनिकी तृष्णा ॥ ४२ ॥
जे अष्ट मूलगुण धारें, तजि अभख जीव न संधारे।
दूजी पड़िमा धर धीरा, व्रतधारक कहिये वीरा ॥ ४३ ॥
बारा व्रत पालै जोई, सेवै जिनमारग सोई।
जे धारें पंच अणुव्रत, त्रय गुणव्रत चउ शिक्षाव्रत ॥ ४४ ॥

चौपई।

तीजी पड़िमा धरि मतिवंत, सामायकमें मुनिसे संत।
पोसामें आरूढ़ विशाल, सो चौथी पड़िमा प्रतिपाल ॥ ४५ ॥

१ ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य। २ सेवक।

छंद चाल।

अब सुनि अष्टम पडिमा ए, त्रस थावर जीवदया ए।
कछु ही धंधा नहिं करनों, आरंभ सबै परिहरनों ॥ ६० ॥
भजनों जिनकों जगदीसा, तजनों जगजाल गरीसा।
तनसों नहिं स्वामित धरनों, हिंसासों अति ही डरनों ॥ ६१ ॥
श्रावकके भोजन करई, नवमी सम चेष्टा धरई।
नवमीतें एतो अंतर, ए हैं कछुयक परिग्रह धर ॥ ६२ ॥
वनमांहीं थोरो रहनों, शीतोष्ण जु थोरो सहनों।
जे नवमी पडिमावंता, जगके त्यागी विकसंता ॥ ६३ ॥
जिन धातु मात्र सब नांखि, कपरा कछुयक ही राखें।
श्रावकके भोजन भाई, नहिं माया मोह धराई ॥ ६४ ॥
आवे जु बुलाएँ जीवों, जिनकों नहिं माया छीवा।
है दशमीतें कछु नूना, परि कीये कर्म अघ चूना ॥ ६५ ॥
एतो ही अंतर उनतें, कबहुक लौकिक वचजनतें।
बोलें परि विरकतभावा, धनको नहिं लेश धरावा ॥ ६६ ॥
आतेकों आरुकारा, जातें सों हल भल धारा।
दसमीतें अतिहि उदासा, नहिं लौकिक वचन प्रकाशा ॥ ६७ ॥
सप्तम अष्टम अर नवमा, ए मध्य सरावग पडिमा।
मध्यनिमें मध्य जु पात्रा, व्रत शील ज्ञान गुण गात्रा ॥ ६८ ॥
अथवा हो श्राविक शुद्धा, व्रतधारक शील प्रबुद्धा।
जो ब्रह्मचारिणी बाला, आजनम शील गुणमाला ॥ ६९ ॥
सो मध्यम पात्रम मध्या, जानों व्रत शील अवध्या।
अथवा निजपतिकों त्यागें, सो ब्रह्मचर्य अनुरागें ॥ ७० ॥
सो परम श्राविका भाई, मध्यनिमें मध्य कहाई।
इनकों जो देय अहारा, सो है भवसागर पारा ॥ ७१ ॥

दोहा।

अन्न वस्त्र जल औषधी, पुस्तक उपकरणादि।
पान नान दान जु करें, ते भव तिरें अनादि ॥ ७२ ॥
हरें सकल उपसर्ग जे, ते निरुपद्रव होंहि।
सुर नरपति है मोक्षमें, राजें अति सुखसों हि ॥ ७३ ॥

१ श्रीमनेके लिये।

छंद चाल ।

जो दशमी पड़िमा धारा, श्रावक सु विवेकी चारा ।
जग धंधाको नहिं लेसा, नहिं धंधाको उपदेशा ॥ ७४ ॥
वनमें हु रहै वर वीरा, ग्रामे हु रहै गुणधीरा ।
आवे श्रावक घरि जीवा, नहिं कनकादिक कछु छींवा ॥ ७५ ॥
एकादशमीतें छोटे, परि और सकलतें मोटे ।
जिनवानी विन नहिं बोलें, जे कितहू चित्त न डोलें ॥ ७६ ॥
मुनिवरके तुल्य महानर, दशमी एकादशमी धर ।
एकादशमी द्वै भेदा, एलिक छुल्लक अघछेदा ॥ ७७ ॥
इनसे नहिं श्रावक कोई, सबमें उतकिष्ट होई ।
त्यागो जिन जगत असारा, लाग्यो निज रंग अपारा ॥ ७८ ॥
पायो जिनराज सुधर्मा, छांडे मिथ्यात अधर्मा ।
जिनके पंचम गुणठाणा, पूरणतारूप विधाना ॥ ७९ ॥
द्वै माहिं महंत सु ऐला, निश्चलता करि सुरशैला ।
जिनके परिग्रह कोपीना, अर कमडल पीछी नीना ॥ ८० ॥
जिनसासनको अभ्यासा, भवभावनिसूं सु उदासा ।
श्रावकके घर अविकारा, ले आप उदंड अहारा ॥ १०८१ ॥
गुणवान साधु सारीसा, लुंचितकेसा विनेरीसा ।
ए ऐलि त्रिवर्णा होई, शूद्रा नहिं ऐलि सु कोई ॥ ८२ ॥
इतनें छुल्लक कछु छोटे, परि और सकलतें मोटे ।
इक खंडित कपरा राखें, तिनकों छुल्लक जिन भाखें ॥ ८३ ॥
कमडलु पीछी कोपीना, इन विन परिग्रह तजि दीना ।
जिनश्रुति अभ्यास निरंतर, जान्यूं है निज पर अंतर ॥ ८४ ॥
जे हैं सु उदंड विहारा, ले भाजनमाहिं अहारा ।
कातरिका केस करावे, ते छुल्लक नाम करावे ॥ ८५ ॥
चारों हैं वर्ण सु छुल्लक, राखें नहिं जगसूं तल्लुक ।
आनंदी आतमरामा, सम्यकदृष्टी अभिरामा ॥ ८६ ॥
ए द्वै हैं भेद बड़ भाई, ग्यारम पड़िमा सु कहाई ।
वन माहिं रहैं वर वीरा, निरभै निरव्याकुल धीरा ॥ ८७ ॥
जिनकी करि सेव सु भाया, जो जीवानिकों सुखदाया ।

१ सुमेर पर्वत । २ [illegible] । ३ [illegible] ।

तिनके रहनेकों थाना, वनमें करने मतिवाना ॥ ८८ ॥
भोजन भेषज जिनग्रंथा, इनकों दे सो निजपंथा—।
पावै अर दे उपकरणा, सो हरै जनम जर मरणा ॥ ८९ ॥
उपसर्ग उपद्रव टारै, ते निरभै थान निहारै।
दसमी अर ग्यारम दोऊ, मध्यम उतकिष्टे होऊ ॥ ९० ॥
अथवा आर्या व्रतधारी, अणुव्रतमें श्रेष्ठ अपारी।
आर्या घरबार जु त्यागै, श्रीजिनवरके मत लागै ॥ ९१ ॥
राखै इक वस्त्र हि मात्रा, तप करि है क्षीण जु गात्रा।
कमडल पीछी अर पोथी,—ले भूति तजी सहु थोथी ॥ ९२ ॥
थावर जंगम तनवाना, जानें सब आप समाना।
जे मुनि करि पात्रे अहारा, सिर लौंच करें तप धारा ॥ ९३ ॥
तिनकीसी रीति जु धारै, जगसों ममता नहिं कारै।
द्विज क्षत्री वणिक कुला ही, है आर्या अति विमला ही ॥ ९४ ॥
अणुव्रत परि महाव्रत तुल्या, नारिनमें यहि अतुल्या।
माता त्रिभुवनकी माई, परमेसुरसों लव लाई ॥ ९५ ॥
आर्याकों वस्त्र जु भोजन, देनें भक्ती करि भोजन।
पुस्तक औषधि उपकरणा, देनें सहु पाप जु हरणा ॥ ९६ ॥
उपसर्ग हरै बुधिवाना, रहनेकों उत्तम थाना।
देवेमें पुन अविनासी, लेवै अति आनंदरासी ॥ ९७ ॥

दोहा।

छै पडिमा जानों जघनि, मध्य जु नवमी ताईं।
दस एकादशमी उभै, उतकिष्टी कहवाईं ॥ ९८ ॥
पतिव्रता जो श्राविका, मध्यनिमाहिं जघन्य।
ब्रह्मचरिणी मध्य है, आर्या उत्तम धन्य ॥ ९९ ॥
पंचम गुण ठाणें व्रती, श्रावक मध्य जु पात्र।
छट्ठें सातवें ठाण मुनि, महामात्र गुणगात्र १०० ॥
कहे मध्यके भेद त्रय, अर उतकिष्टे तीन।
सुनों जघन्य जु पात्रके, तीन भेद गुणलीन ॥ १०१ ॥
चौथे गुणठाणे महा, क्षायक सम्यकवंत
सो उतकिष्ट जघनिमें, भाषें श्रीभगवंत ॥ १०२ ॥

। २ इसमें।

नवधा भक्ति जु कोनसी, सो सुनि सूत्र बखानि ।
मिथ्यामारग छाँडि करि, निज श्रद्धा उर आनि ॥ ११८ ॥
आवौ आवौ सबद कहि, तिष्ठ तिष्ठ भाखेहि ।
सो संग्रह जानों बुधा, अब संग्रह टारेहि ॥ ११९ ॥
ऊँचौ आसन देय शुभ, पात्रनिकों परवीन ।
पग धोवै भरनै बहुरि, होय बहुत आधीन ॥ १२० ॥
करै प्रणाम विनै करी, त्रिकरण शुद्धि धरेहि ।
खानपानकी शुद्धता, ये नव भक्ति करेहि ॥ १२१ ॥
सुनों सात गुण पंडिता, दातारनिके भेद ।
धारै धरमी धीर नर, उधरै भवजल तेह ॥ १२२ ॥
इह भव फल चाहै नहीं, क्रियावान अति होय ।
कपट रहित ईर्षा रहित, धरै विषाद न सोय ॥ १२३ ॥
मुद उदारता गुण सहित, अहंकार नहिं जानि ।
ए दाताके सात गुण, कहे सूत्रपरवानि ॥ १२४ ॥
श्रद्धा धरि निज शक्तिजुत, लोभ रहित है धीर ।
दया क्षमा दृढ़ चित्त करि, देय अन्न अर नीर ॥ १२५ ॥
रागदोष मद मोह भय, निद्रा मन्मथपीर ।
इत्यादि जु असंजमा, सो देवौ नहिं वीर ॥ १२६ ॥
यह आज्ञा जिनराजकी, तप स्वाध्याय सु ध्यान ।
वृद्धिकरण [illegible] आहार [illegible] ज्ञान ॥ १२७ ॥
[illegible] गुणनके धीर ।
[illegible] सुनत ए, भाषै श्रीजिन वीर ॥ १२८ ॥
[illegible] अतिथिनिको, द्रव्य चारमों सोइ ।
दया [illegible] कारण है, हिंसानाशक होइ ॥ १२९ ॥
[illegible] कारण महा, लोभ अजसकी खानि ।
दान करै नाशै सदा, इह निश्चै उर आनि ॥ १३० ॥
लोभ रहित निज भाव धरि, धर्मगुरुके लाग ।
जिनके दर्शन मात्र हो, मिटै सकल दुख सोग ॥ १३१ ॥
[illegible] याते सुनों, पर [illegible] न होय ।
[illegible] भावें धरै, जिन आज्ञा जु धरेय ॥ १३२ ॥

तिनकों जो सु अहार दे, ता सम और न कोइ ।
दानधर्मतैं रहित जे, किरपण कहिये सोइ ॥ १३३ ॥
कियौ आपने अर्थ जो, सो ही भोजन भ्रात ! ।
मुनिकों अरति विषाद तजि, सो भवपार लहात ॥ १३४ ॥
शिथिल कियौ जिह लोभकों, परमपंथके हेत ।
तेई पात्रनिकों सदा, विधि करि दान जु देत ॥ १३५ ॥
सम्यकदृष्टी दान करि, पावै पुर निरवान ।
अथवा भव धरनौं परै, तौ पावै सुरथान ॥ १३६ ॥
बिन सम्यक्त जु दान दे, त्रिविधि पात्रकों जोहि ।
पावै इंद्री भोग सुख, भोगभूमिमें सोहि ॥ १३७ ॥
उत्तम पात्र सु दानतें, भोगभूमि उतकिष्ट ।
पावै दशधा कल्पतरु, जहां न एक अनिष्ट ॥ १३८ ॥
मध्य पात्रके दान करि, मध्य भोगभू माहिं ।
जघनि पात्रके दान करि, जघनि भोगभू जाहिं ॥ १३९ ॥
पात्रदानको फल इहै, भाषैं गणधर देव ।
धन्य धन्य जे जगतमें, करैं पात्रकी सेव ॥ १४० ॥

छंद चाल ।

देने औषध सु अहारा, देने श्रुत पाप महारा ।
रहनेको देनी ठौरा, करने अति ही जु निहोरा ॥ १४१ ॥
हरने उपसर्ग तिनूंके, धरने गुण चित्त जिनूंके ।
सुख साता देनी भाई, सेवा करनी मन लाई ॥ १४२ ॥
ए नवविधि पात्र जु भाखे, आगम अध्यातम साखे ।
बाहुरी ग्रंथ भेद कुपासा, धारैं बाहिज मनमासा ॥ १४३ ॥
जे शुभ किरिया करि युक्ता, जिनके नाहिं रीति अयुक्ता ।
सम्यकदर्शन बिन साधू, तप संजम शील अराधू ॥ १४४ ॥
पावैं नाहिं भवजल पारा, जावैं सुरलोक विचारा ।
पढ़ुवै नव ग्रीव लगें भी, जिननैं अपवर्ग भगें भी ॥ १४[illegible]
पण भावलिंग बिनु भाई, मिथ्यादृष्टि हि कहाई ।
द्रव्यलिंगि भाव जानि जैं, उत्कृष्ट कुपात्र [illegible]
जे सम्यक बिन अणुव्रती, द्रव्य-श्रावक [illegible]
ते मध्य कुपात्र बखानें, [illegible]

आतम पर परखैं नाहीं, गनिये बहिरातम माहीं।
पोद्गल पुद्गलकौं जानैं, आतम अनुभौ नहीं पानैं ॥ १४८ ॥

दोहा ।

मथानि कुपात्रा अव्रती, बाहिर धर्मप्रतीति ।
हीनमें समदृष्टी समा, नहिं सम्यककी रीति ॥ १४९ ॥
शुभगति पावें तौ कहा, लहै न केवलभाव ।
ये संसारी जानिये, भाषैं श्रीजिनराव ॥ १५० ॥
इनको जानि कुपात्र जो, धारैं भक्ति विधान ।
सो कुभोगभूमी लहै, अल्पभोग परवान ॥ १५१ ॥
पर उपगार दया निमित, सदा सकलकौं देय ।
पात्रनिकी सेवा करै, सो शिवपुर सुख लेय ॥ १५२ ॥
नहिं श्रावक नहिं व्रत जती, नहिं श्रावकव्रत जानि ।
नहिं सरधा जिनधर्मकी, ते अपात्र परवानि ॥ १५३ ॥
तिनै न करनौं भक्तिनौं, दया सकल परि जोगि ।
करनी भक्ति सु पात्रकी, भक्ति अपात्र अजोगि ॥ १५४ ॥
करनी करुणा सकल परि, हरनी सबकी पीर ।
धरनी सेवा संतकी, इह भाषैं श्रीवीर ॥ १५५ ॥
पात्रापात्र द्विभेद ए, कहे सूत्र अनुसार ।
अब सुनि करुणादानकौ, भेद विविधि परकार ॥ १५६ ॥
सबै आतमा आपसे, चेतनगुण भरपूर ।
निज परकी पहिचान बिन, भ्रमैं जगतमें कूर ॥ १५७ ॥
इहै कर्मतें हैं दुखी, आधि व्याधिके रूप ।
के तिनमें मूढ़ही, लखैं नहीं चिद्रूप ॥ १५८ ॥
जिन सब पर धारिह दया, करै सदा उपगार ।
नर तिर सबही जीवकौं, हरै कष्ट अनवार ॥ १५९ ॥
अपनी शक्ति प्रमाण जो, मेटै परकी पीर ।
तन मन धन करि सर्वदा, माता दे बर बीर ॥ १६० ॥
अन्न वस्त्र जल औषधी, थान आदि ले देय ।
बाटै अपने निज सदृ, करुणाधार धरेय ॥ १६१ ॥
अन्ध मूढ गोमहिषिनिकौं, अति ही बनत अपार ।
अंध पंगु दुखी न करि, करि दया अधिकार ॥ १६२ ॥

बंदि छुड़ावै द्रव्य दे, जीव बचावै सर्व ।
अभैदान दे सर्वको, धरै न धनको गर्व ॥ १६३ ॥
काल दुकालै माहिं जो, अन्नदान बहु देय ।
रंकनिको पीहर जिकौ, नरभवको फल लेय ॥ १६४ ॥
जाको जगमें कोउ नहीं, ताको भीरी सोइ ।
दुरबलको बल शुभमती, प्रभुको दासा होइ ॥ १६५ ॥
शीतकालमें शीतहर, दे वस्त्रादिक वीर ।
उष्णकालमें तापहर, वस्तु प्रदायक धीर ॥ १६६ ॥
वर्षाकालै धर्मधी, दे आश्रम सुखदाय ।
जल बाधाहर वस्तु दे, कोमलभाव धराय ॥ १६७ ॥
भांति भांतिकी औषधी, भांति भांतिके चीर ।
भांति भांतिकी वस्तु दे, सो जैनी जगवीर ॥ १६८ ॥
दान विधी जु अनंत है, कौ लग करें बखान ।
जानें श्रीजिनरायजू, किह दाता बुधिवान ॥ १६९ ॥
भक्ति दया द्वै विधि कही, दान-धर्मकी रीति ।
ते नर अंगीकृत करें, जिनके जैन प्रतीति ॥ १७० ॥
लक्ष्मी दासी दानकी, दान मुकतिको मूल ।
दान समान न आन कोउ, जिन मारग अनुकूल ॥ १७१ ॥
अतीचार या व्रतके, तजै पंच परकार ।
तब पावै व्रतशुद्धता, लहै धर्म अविकार ॥ १७२ ॥
भोजनको मुनि आवहीं, तब जो मूढ़ कदापि ।
मनमें ऐसी चितवै, दान करंता क्वापि ॥ १७३ ॥
लगि है बेल्यो चूकि हों, जगतकाजतें आज ।
तातें काहूकों कहै, जाय करें जगकाज ॥ १७४ ॥
मो विन काम न होइगो, तातें जानों मोहि ।
दान करेंगे भ्रातृ-सुत, इहह कारिज होहि ॥ १७५ ॥
धनको जाने सार जो, धर्म हि जाने रंच ।
सो मूढ़नि सिरमौर है, यामें बहुत प्रपंच ॥ १७६ ॥
कहै भ्रात पुत्रादिको, दानतनों शुभ काम ।
आप सिधारै जड़मती, जगधंधाके ठाम ॥ १७७ ॥

परदातारी उपदेश यह, दूषण पहलो जानि ।
पराधीन है या घरी, यह निश्चै उर आनि ॥ १७८ ॥
मुनि सम हैगो धन कहा, इह धारै उर धीर ।
भुक्ति मुक्ति दाता मुनि, षट कायनिके वीर ॥ १७९ ॥
पुनि सचित्तनिक्षेप है, दूजो दोष अजोगि ।
ताहि तजै तेई भया, दानव्रतको जोगि ॥ १८० ॥
सचित्त वस्तु कदली दला, ढाकपत्र इत्यादि ।
तिनमें मेलै वस्तु जो, मुनिकौं देवौ वादि ॥ १८१ ॥
दोष लगै जु सचित्तको, मुनिके भक्ति अपार ।
तातैं सचित्तनिक्षेपको, त्याग करै व्रतधार ॥ १८२ ॥
तीजो सचित्तपिधान है, ताहि तजो गुणवान ।
कमलपत्र आदिक सचित, तिन करि ढांकयो धान ॥ १८३ ॥
नहि देनौं मुनिगणको, लगै सचित्तको दोष ।
प्रासुक आहारी मुनी, व्रत तप संजम कोष ॥ १८४ ॥
काल उलंघन दानको, योग्य होय नहिं दान ।
सो चौथो दूषण भया, त्यागौ ते मतिवान ॥ १८५ ॥
है मत्सरता पंचमो, दूषण दुखकी खानि ।
करै अनादर दानको, ता सम मूढ़ न आनि ॥ १८६ ॥
देखि न सकै विभूति पर, परगुण देखि सकै न ।
सहि न सकै पर उच्चता, सो मत्सरता तजै न ॥ १८७ ॥
नहि मात्सर्य समान कोउ, दूषण जगमें आन ।
भाखैं जिनेंद्र सूत्रमें, तीर्थंकर भगवान ॥ १८८ ॥
अतीचार ए दानके, कहे जु श्रुत अनुसार ।
इनकूं त्याग किये सुधी, होय व्रत अविकार ॥ १८९ ॥
कहौं सबै चउदानकौं, जे द्वादश व्रत मूल ।
भोजन भेषज अर अभय, ज्ञानदान, इह मूल ॥ १९० ॥
भोजन दानें शक्ति है, औषध रोग निवार ।
अभयदानतें निर्भया, श्रुति दानें श्रुति पार ॥ १९१ ॥
कहे व्रत द्वादश सबै, दया आदि सुखदाय ।
दान अनंत सुखंकरा, जिन करि भव दुख जाय ॥ १९२ ॥

एक एक व्रतके कहै, पंच पंच अतिचार ।
त्यागै निरतीचार व्रत, ते पावै भवपार ॥ १९३ ॥
सम्यक बिन नहिं ज्ञान है, ज्ञान बिन नहिं वैराग ।
बिन वैराग न ज्ञान है, राग तजै बड़भाग ॥ १९४ ॥

[illegible] ।

अब सुनि सब व्रतको सोधा, देशावकाशिक बोधा ।
ताकी सुनि रीति जु भाई, जैसी जिनराज बताई ॥ १९५ ॥
पहले जु करी परमाना, दिशि विदिशाकी विधि नाना ।
इंद्री विषयानिको नेमा, कीयो धारि व्रतको प्रेमा ॥ १९६ ॥
धन धान्य अरु वस्त्रादी, भोजन पानाभरणादी ।
मरजादा सबकी धारी, जीवितलों धर्म सम्हारी ॥ १९७ ॥
जामैं मरजादा धरनी, तामैं हू थाकी करनी ।
करनी षटमासी, तामैं, चहुरी है मासी जामैं ॥ १९८ ॥
ताहूमैं मासी नेमा, मासीमैं पाखी नेमा ।
पाखीमैं आधी पाखी, ताहूमैं दिन दिन भाखी ॥ १९९ ॥
दिन माहीं पहरां धारै, पहरनिमैं घरी विचारै ।
पल पलके धारै नेमा, जाकै जिनमतसों प्रेमा ॥ २०० ॥
भोगनिसों घटतो जाई, व्रतमैं बढ़तो अधिकाई ।
सीमानैं सीमा धारै, जिनमारग जतनें धारै ॥ २०१ ॥
है बाड़ि फलें खेतानिकै, जैसैं कोट जु नगरनिकै ।
तैसैं यह द्वादश व्रतकै, देशावकाशि व्रत लखकै ॥ २०२ ॥
देशावकाशि व्रत माहीं, सतरा नेम जु सक नाहीं ।
तिनकी सुनि रीति जु मित्रा, जिन करि है जन्म पवित्रा ॥ २०३ ॥

दोहा ।

नियम किये व्रत सोभ ही, नियम बिना नहिं सोभ ।
तातैं व्रत धरि नेमको, धारै तजि मद लोभ ॥ २०४ ॥

[illegible] ।

उक्तं च श्रावकाचारे ।

भोजने षट्रसे पाने, कुंकुमादिविलेपने ।
पुष्पतांबूलगीतेषु, नृत्यादौ ब्रह्मचर्यके ॥ १ ॥

स्नानभूषणवस्त्रादौ, वाहने शयनासने ।
सचित्तवस्तुसंख्यादौ, प्रमाणं भज प्रत्यहम् ॥ २ ॥

चौपई ।

भोजनकी मरजादा गहै, वारंवार न भोजन लहै ।
परभर भोजन तोहि जु करै, प्रात समै जो संख्या धरै ॥ २०५ ॥
अन्न मिठाई मेवा आदि, भोजन माहिं गिनै जु अनादि ।
बहुरि सनीगी अर पकवान, भोजन जाति कहै भगवान ॥ २०६ ॥
नर मरजादा माफिक गहै, वारवार ना लीयौ चहै ।
षट रसमें राखै जो रसा, सोई लेय नेममें बसा ॥ २०७ ॥
और न रस चाखौ बुधिवन्त, इह आज्ञा भाषै भगवन्त ।
कामउद्दीपक हैं रसजाति, रसपरित्याग महातप भाति ॥ २०८ ॥
जो रसजाति तजी नहिं जाय, करि प्रमाण नियमें ठहराय ।
पानी शरवत दूधर मही, इत्यादिक पीवेके सही ॥ २०९ ॥
तिनमें लेवौ राखै जोहि, ता माफिक लेवौ बुध सोहि ।
चोवाचन्दन तेल फुलेल, कुंकुम और अरगजा मेल ॥ २१० ॥
औषधि आदि लेप हैं जेह, संख्या बिन न लगावै तेह ।
जातें देह देह दुरगन्ध, याकै कहा लगावै सुगन्ध ॥ २११ ॥
जो न सर्वथा त्यागै वीर, तोहू प्रमाण गहै नर धीर ।
बहुरजातिसौं छाँडै प्रेम, अति दीपीक कहै गुरु एम ॥ २१२ ॥
[illegible] उदै जो त्यागि न सकै, थोरे लेय पापतैं सकै ।
पान सुपारी इंदा आदि, लौंगादिक मुखशोध अनादि ॥ २१३ ॥
[illegible] सावित्री जानि, नागी फल इत्यादि बखानि ।
सबमें पान महा दीपीक, जैसे पावनि माहिं अग्नीक ॥ २१४ ॥
तातैं त्यागियौ भाखौ मीत, पाननिमें प्राणी जु अनीत ।
जो अतिसोगी छाडि न सकै, थोरे न्याय डांपनैं सकै ॥ २१५ ॥
गीत नृत्य वादित्र जु सबै, उपजावै अति मनमथ गबै ।
ए कौतूहल अधिकै बन्ध, इनमें जो राचै सो अन्ध । २१६ ।
जो न सर्वथा छाडै जाय, तोहू न अधिक न राग उपाय ।
[illegible] माफिक ही सबै, [illegible] ही गबै । २१७ ।
घर मैंड या माहीं भीर, आगून वरी भरनी ठौर ।
[illegible] सिवा [illegible], मुनिवर इनमें [illegible] । २१८ ।

तामें दोष लगै अधिकाय, भाव सराग महा दुखदाय ।
पातरि नृत्य अखारे माहिं, नट नट्वा अथ नृत्य कराहिं ॥ २१९ ॥
बाजीगर आदिक बहु ख्याल, बिनु परमाण न देखौ लाल ।
अब सुनि ब्रह्मचर्यकी बात, याहि जु पाले तेहि उदात ॥ २२० ॥
पर नारीकौ है परिहार, निजनारीमें इह निरधार ।
जावो जीव दिवसकौ त्याग, रात्रिविषैं हू अलपहि राग ॥ २२१ ॥
पाँचूं परवी सील गहेय, अर सब व्रतके दिवस धरेय ।
कबहुक मैथुन सेवन परै, सो मरजादा माफिक करै ॥ २२२ ॥
महा दोषको मूल कुसील, या तजिवेमें ना करि ढील ।
सेवत मनमथ जीव विघात, इहै काम है अति उतपात ॥ २२३ ॥
जो न सर्वथा त्याग्यौ जाहि, तौहू अलप सेववौ ताहि ।
नदी तलाव वापिका कूप, तहाँ जाय न्हावौ जु विरूप ॥ २२४ ॥
जो न्हावें विनछाणें जले, ते सब धर्म-कर्मतैं टलैं ।
जैसौ रुधिरयकी है स्नान, तैसौ अनगाले जल जान ॥ २२५ ॥
अचित्त जले न्हावौ है भया, प्रासुक निर्मल विधिकरि लया ।
ताहूकी मरजादा धरै, विना नेम कारिज नहिं करै ॥ २२६ ॥
रात्री न्हावौ नाहिं कदापि, जीव न सूझैं मित्र कदापि ।
हिंसा सम नहिं पाप जु और, दया सकल धर्मनिकौ मौर ॥ २२७ ॥
आभूषण पहिरे हैं जिते, घरमें और धरै हैं तिते ।
नियम विना नहिं भूषण धरै, सकल वस्तुकौ नियम जु करै ॥ २२८ ॥
परके दीये पहरै जे हि, नियम माहिं राखै हैं तेहि ।
रतनत्रय भूषण विनु आन, पाहन सम जाने मतिवान ॥ २२९ ॥
वस्त्रनिकी जेती मरजाद, ता माफिक पहरै अविवाद ।
अथवा नए ऊजरे और, नियमरूप पहरै सुभतौर ॥ २३० ॥
सुसरादिकके दीने भया, अथवा मित्रादिकतैं लया ।
राजादिकने की बकसीस, अद्भुत अंबर मोल गरीस ॥ २३१ ॥
नित्यनेममें राखै होइ, तो पहिरै नहितरि नहिं कोइ ।
पाँवनिकी पनही हैं जे हि, तेऊ वस्त्रनि माहिं गिनेहि ॥ २३२ ॥
नहिं दुरानी निज परतणी, राखै सो पहिरै इम भणी ।
पनही तजे पहरवौ भया, तौ उपजै प्राणिनिकी दया ॥ २३३ ॥

रथवाहन सुखपाल इत्यादि, हस्ती ऊँटरु घोटक आदि।
एई थलके वाहन सर्वे, फुनि विमान आदिक नभ फबै ॥ २३४ ॥
नाव जिहाज आदि जलकेइ, इनमें ममता नाहिं धरेइ।
कोइक जावोजीवै तजै, कोइक राखे नियमा भजै ॥ २३५ ॥
तिनहूँमें निति नेम करेइ, बहु अभिलाषा छांडि जु देइ।
मुनि हूवो चाहे मन मांहि, जगमाहीं जाको चित नाहिं ॥ २३६ ॥
वाहन चढ़ै होइ नहिं दया, तातैं तजैं धन्य ते भया।
मुनि आर्या अर श्रावक बड़े, हैं जु निरारंभी अति छड़े ॥ २३७ ॥
ते वाहनको नाम न धरैं, जीवदया मारग अनुसरैं।
आरंभी श्रावक राजादि, तिनके वाहन हैं जु अनादि ॥ २३८ ॥
नेऊ करैं प्रमाण सुधीर, नित्यनेम धारैं जगधीर ॥
तीर्थंकर चक्री अरु काम, मुनि है फिरैं पयादे राम ॥ २३९ ॥
तातैं पगां चालिवो भलो, परसिर चलिवो है अघमिलो
ऐ भावना भावत रहै, सो वेगो शिवकारन लहै ॥ २४० ॥
रतनत्रय शिवकारण कहे, दरसन ज्ञान चरण जिन लहे।
अब मुनि शयनासनको नेम, धारैं श्रावक व्रतमों प्रेम ॥ २४१ ॥
ओढ़ि पलँगपरि सोवो तनों, सोहू शयन परिग्रह गनों ॥
सौड़ दुलाई तकिया आदि, ए सब सज्या मांहि अनादि ॥ २४२ ॥
इनको नेम धरै व्रतवान, भूमि शयन चाहै मतिवान ॥
भूमिशयन जोगीश्वर करैं, उत्तम श्रावक हू अनुसरैं ॥ २४३ ॥
आरंभी गृहस्थनिके सेज, तेहू नियम सहित अधिकेज ॥
भरतरि परनारी सोवैहि, सो सज्या बुध नहिं जोवैहि ॥ २४४ ॥
निज सज्जा राखी है मया, ताहूमें परमित अति भया ॥
व्रतके दिन भू सज्जा करैं, भोगभावमें प्रेम न धरैं ॥ २४५ ॥
गादी गाऊ तकिया आदि, चाँकी चाँका पाट इत्यादि ॥
सिंहासन मसूरा जेतेक, आसन माहिं गिनो जु अनेक ॥ २४६ ॥
गिलम गलीचा संतरजादि, तासम चादर आदि अनादि ॥
.... ॥ २४७ ॥
केती भांति बिछौनादी हि, सो सब आसन मांहिं गनीहि ॥
तिन सबके मरजा परवान, जैसे सुकृते राखे थान ॥ २४८ ॥

तिनपरि बैसै और जु त्याग, है जाको व्रतसूं अनुराग ॥
सचित वस्तुको भोजन निंद, जाहि निषेधै त्रिभुवनचंद ॥ २४९ ॥
मुनि आर्या त्यागेंहि सचित्त, उत्तम श्रावक लेंहि अचित्त ॥
पंचम पड़िमा आदि सुधीर, एकादस पड़िमा लों वीर ॥ २५० ॥
कबहु न लेइ सचित्त अहार, गहै अचित्त वस्तु अविकार ॥
पहली पड़िमा आदि चतुर्थ,-पड़िमा लों ले सचितहि अर्थ ॥ २५१ ॥
पै मनमें कंपै सु विवेक, तजै सचित्त जु वस्तु अनेक ॥
केइक राखै तामें नेम, नितप्रति धारै व्रतसों प्रेम ॥ २५२ ॥
कहा कहावै वस्तु सचित्त, सो धारो भाई निज चित्त ।
पत्र फूल फल छांड़ि इत्यादि, कूंपल मूल कंद बीजादि ॥ २५३॥
पृथिवी पाणी अग्नि जु वाय, ए सहु सचित कहे जिनराय ।
जीव सहित जो पुदगल पिंड, सो सब सचित तजै गुणपिंड ॥ २५४ ॥
ये सहु जाति सचित्त तजेय, सो निहचै जिनराज भजेय ।
जो न सर्वथा त्यागी जाय, तौ कैयक ले नेम धराय ॥ २५५ ॥
संख्या सचित वस्तुकी करै, सकल वस्तुको नियम जु धरै ।
गिनती करि राखै सब वस्तु, तबहि जानिये व्रत्त प्रसस्त ॥ २५६ ॥
लाडू पेड़ा पाक इत्यादि, औषधि रस अर चूरण आदि ।
बहुत वस्तु करि जो निपजेइ, एक द्रव्य जानों बुध तेइ ॥ २५७ ॥
वस्तु गरिष्ट न खावे जोग, ए सब काम तनें उपयोग ।
जो कदापि ये खाने परै, अलपथकी अलप जु आहरै ॥ २५८ ॥
सत्रा नेम चितारै नित्य, जानों ए सहु ठाठ अनित्य ।
प्रातथकी संध्यालों करै, फुनि संध्या समये बुध धरै ॥ २५९ ॥
इती वस्तु तौ त्यागै धीर, राति परै नहिं सेवै वीर ।
भोजन षटरस पान समस्त, चंदनलेप आदि परसस्त ॥ २६० ॥
तजै राति तंबोल सुवीर, दया धर्म उर धारै धीर ।
गीत श्रवण जो होय कदापि, राखै नेम माहिं सो क्वापि ॥ २६१ ॥
नृत्यहुसों नहिं जाको भाव, पै न सर्वथा छांड़यौ चाव ।
जो लग गृहपति कबहुक लखै, सोहू नेममाहिं जो रखै ॥ २६२ ॥
ब्रह्मचर्यसों जाको हेत, परनारीसों वीर सचेत ।
निज नारीहीमें संतोष, दिनकों कबहु न मनमथ पोष ॥ २६३ ॥

दुखी देखि करुणा उर आनैं, लखि विपरीत राग नहिं ठानैं ॥ ५४७ ॥
द्वेष हु नाहिं धरै जु महंता, है मध्यस्थ महा गुणवंता।
बहुरि धर्मके चारि जु पाया, ते सम्यकदृष्टिनिकों भाया ॥ ५४८ ॥
आज्ञाविचय कहावे सोई, जिनवरने भाष्यौ सोई।
ताकी दृढ़ परतीति करै जो, संसय विभ्रम मोह हरै जो ॥ ५४९ ॥
कर्म नाशको उद्यम ठानैं, रागद्वेषकी परणति भानैं।
सो अपायविचयो है दूजौ, तिरै जगतथी धारै तु जौ ॥ ५५० ॥
करै उपाय शुद्ध भावनिकों, अर निरवाणपुरी पावनकौं।
तीजौ नाम विपाकविचै है, भवभावनितैं भिन्न रहै हैं ॥ ५५१ ॥
शुभके उदै संपदा आवे, अशुभ उदै आपद बहु पावे।
दोऊ जानै तुल्य सदा ही, हर्षविषाद धरै न कदा ही ॥ ५५२ ॥
पुनि संस्थानविचय है चौथौ, सर्व जगतकौं जानै थोथौ।
तीन लोककी जानि सरूपा, जिनमारग अनुसार अनूपा ॥ ५५३ ॥
सबकौ भूषण चेतनराया, चेतनसौं नहिं दूजौ भाया।
सर्व लोकनूं छांडि जु मीती, चेतनकी धारै परतीती ॥ ५५४ ॥
चेतन भावनिमैं लौ लावै, अपनौं रूप आपमैं ध्यावै।
ए हैं धरमध्यानके भेदा, सुकल सदायक पाप उछेदा ॥ ५५५ ॥
चौथे गुणठाणें होइ धर्मा, संपूरण गुणठाणें परमा।
धर्मध्यानके चउ गुणठाणा, ते देवाधिदेवने जाणा ॥ ५५६ ॥
अहमिंद्रादिक पद फल ताकौ, वरणे जाहिं न अति गुण जाकौ।
कारण सकल ध्यानकौ एही, धर्मध्यानतैं सकल जु लेही ॥ ५५७ ॥
हुनि श्रावक दोऊके गाया, धर्मध्यान सो नहिं उपाया।
मुनिको पूरणरूप भवानों, श्रावकके कछु न्यून बखानों ॥ ५५८ ॥
मुनिके अति ही निश्चलताई, श्रावकके किंचित थिरताई।
परिग्रह चंचलताकौ मूला, तातैं धर्म न होय समूला ॥ ५५९ ॥
दे तृष्णा छांडी बहुतेरी, करि मरजादा परिग्रहकेरी।
तातैं धर्मध्यानके पात्रा, श्रावक हू जाणौं गुणगात्रा ॥ ५६० ॥
धर्मध्यानके च्यारि स्वरूपा, और हु श्रीगुरु कहे अनूपा।
इक पिंडस्थ पदस्थ द्वितीया, रूपस्था तीजौं गनि लीया ॥ ५६१ ॥
रूपातीत चतुर्थम भेदा, इह धर्मकौ पाप उछेदा।
इनके भेद सुनौं मन लावे, जाकरि सुकलध्यानहु पावे ॥ ५६२ ॥

पिंडमाहिं सब लोक विभूती, चितवै ज्ञानी निज अनुभूती ।
पिंडलोकको राजा चेतन, जाहि स्पर्श सकै न अचेतन ॥ ५६३ ॥
ताको ध्यान धरै जो ध्यानी, सो होवै केवल निज ज्ञानी ।
बहुरि पदस्थ ध्यान बुध धारै, जिनभाषित पद मंत्र विचारै ॥ ५६४ ॥
पंच परमगुरु मंत्र अनादी, ध्यावै धीर त्याग क्रोधादी ।
नमोकारके अक्षर भाई, पैंतीसों पूरण सुखदाई ॥ ५६५ ॥
षोडस अक्षर मंत्र महंता, पंच परमगुरु नाम कहंता ।
मंत्र षडाक्षर अ र ह त सि द्धा, अ सि आ उ सा पंच प्रसिद्धा ॥ ५६६ ॥
नामोकारके पैंतिस अक्षर, प्रसिद्ध छै अरु षोडस अक्षर ।
अरहंत सिध आयरि उवझाया, साहू जपतें अंक गिनाया ॥ ५६७ ॥
षड अक्षर अ र हं त जपो जू, सिद्ध नाम उरमाहिं धपो जू ।
है अक्षर भूलों मति भाई, सिद्ध सिद्ध इह जाप कराई ॥ ५६८ ॥
मंत्र इकाक्षर है ओंकारा, ब्रह्मबीज इह प्रणव अपारा ।
पंच परमपद या अक्षरमें, याहि ध्याय जगमें नहिं भरमें ॥ ५६९ ॥
शुक्लरूप अति उज्वल सजला, ध्यावै प्रणवातें है विमला ।
सोऽहं सोऽहं अजपाजापा, हरै संतके सब संतापा ॥ ५७० ॥
इह सुर सबही प्राणिगणके, होवै स्वास उस्वास सबनिके ।
पै नहिं याको भेद जु पावै, तातैं भोंदू भव भरमावै ॥ ५७१ ॥
जो यह नाद सुनै वरवीरा, पावै शुक्लध्यान गुणधीरा ।
उज्वलरूप दीप ए अंका, ध्यावै सो नासै भवपंका ॥ ५७२ ॥
जिनवर सो नहिं देव जु कोई, अजपा सो नहिं जाप सु
मंत्र अनेक जिनागम गाये, ते ध्यानी मुनिराजनि ध्याये
सबमें पंच परम गुरु नामा, पंच इष्ट विन मंत्र निकामा
मंत्राक्षरमाला जो ध्यावै, नाम पदस्थध्यान सो पावै ॥
अब सुनि तीजो भेद सु भाई, है रूपस्थ महा सुखदाई ।
कर्तृम और अकर्तृम मूरत, जिनवरकी ध्यावै शुभ ...
जिनवरको साकार स्वरूपा, तेरम गुणठाणे जु अनूपा
अतिसै प्रातिहार्यधर स्वामी, धरै अनंत चतुष्टय ...
समवसरण सोभित जिनदेवा, नाहिं जिनाहिं उर ...
पुनि अतिशय गुणथाना, ध्यावै चौथो भेद सु

रूपातीत समान न कोई, धर्मध्यानकौ भेद जु होई ।
ध्यावै सिद्धरूप अतिशुद्धा, निराकार निरलेप प्रबुद्धा ॥ ५७८ ॥
पुरुषाकार अरूप गुसांई, निरविकार निरदूपण सांई ।
वसु गुण आदि अनंत गुणाकर, अवगुण रहित अनंत प्रभाधर ॥ ५७९ ॥
लोकशिखर परमेसुर राजै, केवलरूप अनूप विराजै ।
जिनकौं उर अंतर जे ध्यावैं, रूपातीत ध्यान ते पावैं ॥ ५८० ॥
सिद्ध समान आपकौं देखैं, निश्चयनय कछु भेद न पेखैं ।
विवहारे प्रभुके हम दासा, निश्चय शुद्ध बुद्ध अविनाशा ॥ ५८१ ॥
ए च्यारूं ध्यावैं जो धर्मा, ते हि पिछानैं श्रुतकौ मर्मा ।
धर्मध्यान चहुंगतिमैं होई, सम्यक विन पावै नहिं कोई ॥ ५८२ ॥
छट्ठम सत्तम मुनिके ठाणा, पंचम ठाणैं श्रावक जाणा ।
चौथे अव्रत सम्यकज्ञानी, तेऊ धर्मध्यानके ध्यानी ॥ ५८३ ॥
चौथेसौं ते सप्तमताईं, धर्मध्यानकौं कहैं गुसांईं ।
धर्मध्यान परभाव सुज्ञानी, नासैं दस प्रकृती निजध्यानी ॥ ५८४ ॥
प्रथम चौकरी तीन मिथ्याता, सुर नारक अर आयु विख्याता ।
अष्टमसौं चौदमलौं शुकली, सुकल समान न कोई विमली ॥ ५८५ ॥
शुकलध्यान मुनिराज हि ध्यावैं, शुकलकरी केवलपद पावैं ।
शुकल नसावै प्रकृति समस्ता, करै शुकल रागादि विध्वस्ता ॥ ५८६ ॥
जे जिन आतमसौं लव लावैं, शुकल तिनौंके श्रीगुरु गावैं ।
शुकलध्यानके चारि जु पाये, ते सर्वज्ञदेवने गाये ॥ ५८७ ॥
द्वै शुक्ला द्वै शुकल जु पर्मा, जानैं श्रीजिनवर सहु मर्मा ।
प्रथम पृथक्तवितर्कविचारा, पृथक नाम है भिन्न प्रचारा ॥ ५८८ ॥
भिन्न भिन्न निज भाव विचारैं, गुण पर्याय स्वभाव निहारैं ।
नाम वितर्क सूत्रको होई, श्रुति अनुसार लखै निज सोई ॥ ५८९ ॥
भावपकी भावांतर भावै, पहलो शुकल नाम सो पावै ।
दूजौ है एकत्ववितर्का,—अवीचार अगणित दुति अर्का ॥ ५९० ॥
भयो एकतार्थ लवलीना, एकी भाव प्रकट जिन कीना ।
श्रुत अनुसार भयो अविचारी, भेदभाव परणति सब टारी ॥ ५९१ ॥
तीजो सूक्षम किरियाधारी, सूक्षम जोग करै अविकारी ।
चौथो जोगरहित निरकिरिया, जारि ध्यान साधु बन [illegible] ॥ ५९२ ॥

अष्टमठाणें पहलो पायो, बारमठाणें दूजो गायो ।
तीजो तेरमठाणें जानों, चौथो चौदमठाणें मानों ॥ ५९३ ॥
इनके भेद सुनों धरि भावा, जिनकरि नासै सकल विभावा ।
होंहि पवित्रभाव अधिकाई, जे अब तक हूए नहिं भाई ॥
भाव अनंत ज्ञान सुख आदी, तिनको धारक वस्तु अनादी ।
लिये अनंता शक्ति महंती, धरै विभूति अनंतानंती ॥ ५९५ ॥
अपनी आप मांहि अनुभूती, अति अनंतता अतुल प्रभूती ।
अपने भाव तेहि निज अर्थो, और सबै रागादि अनर्थो ॥
अपनो अर्थ आपमें जानै, आतम-सत्ता आप पिछानै ।
इक गुणतैं दूजो गुण जावे, ज्ञानथकी आनंद पदावै ॥ ५९७ ॥
गुण अनंतमैं लीलाधारी, सो पृथक्त्ववीतर्कविचारी ।
अर्थथकी अर्थांतर जावै, निज गुण सत्ता मांहि रहावै ॥ ५९८ ॥
योगथकी योगांतर गमना, राग दोष मोहादिक वमना ।
शब्दथकी शब्दांतर सोई, ध्यावै शब्दरहित है सोई ॥ ५९९ ॥
व्यंजन नाम शुद्ध परजाया, जाको नाश न कबहुं बताया ।
वस्तुशक्ति गुणशक्ति अनंती, तेई पर्यय जानि महंती ॥ ६०० ॥
व्यंजनतैं व्यंजन परि आवै, निजस्वभाव तजि कितहु न जावै ।
श्रुति अनुसार स्वै निजरूपा, चिन्मूरति चैतन्य स्वरूपा ॥ ६०१ ॥
जिनसूत्रमें भाव श्रुतो जो, प्रगटै अनुभव ज्ञानमयी जो ।
सो पृथक्त्ववीतर्कविचारा, ध्यावै साधू ब्रह्म विहारा ॥ ६०२ ॥

दोहा ।

जानि पृथक्त्व अनंतता, नाम वितर्क सिधंत ।
है विचार अविचार निज, इह जानों विरतंत ॥ ६०३ ॥

बेसरी छंद ।

लेश्या शुक्ल भाव अति शुद्धा, मन वच काय भये जु निरुद्धा ।
धर्म एक और है भेदा, सो तुम धारहु टारहु खेदा ॥ ६०४ ॥
उपशमश्रेणी क्षपक जु श्रेणी, तिनमें क्षायक मुक्ति निसेनी ।
पहलो शुक्ल जु दोउ धारै, दूजो क्षपकबिना न निहारै ॥ ६०५ ॥
उपशम वारै ग्यारम ठाणा, पडवै उपरै गुणठाणा ।
जो कदाचि मरहूतै जाई, तो अहमिंद्रलोकहि जाई ॥ ६०६ ॥

नर ह्वै करि धारै फिर धर्मा, चढै क्षपकश्रेणी जु अमर्मा।
क्षपक श्रेणिधर धीर मुनिंद्रा, होवै केवलरूप जिनिंद्रा ॥ ६०७ ॥
बारम ठाणें दूजौ सुकला, प्रकटै जा सम और न विमला।
इमैं क्षपकश्रेणि अधिकाई, कहीं जाय नहिं क्षपक बढाई ॥ ६०८ ॥
अष्टम ठाणें प्रगटै श्रेणी, सप्तमलों श्रेणी नहिं लेणी।
क्षपक श्रेणिधर सुकल निवासा, प्रकृति छतीस नवें गुण नासा ॥ ६०९ ॥
दशमें सूक्ष्म लोभ छिपावै, दशमाथी बारमकों जावै।
ग्यारमकों पैंडो नहिं लेवै, दूजौ सुकलध्यान सुख वेवै। ॥ ६१० ॥
साधकताकी हद्द बताई, बारमठाण महा सुखदाई।
जहां षोडसा प्रकृति खिपावै, शुद्ध एकतामैं लव लावै ॥ ६११ ॥

सोरठा।

मार्यौ मोह पिशाच, पहले पायेथीसे मुनी।
तजौ जगतकौ नाच, पायो ध्यायौ दूसरौ ॥ ६१२ ॥
है एकत्ववितर्क, अवीचार दूजौ महा।
कोटि अनंता अर्क, जाकौ सो तेज न लहै। ६१३ ॥
ज्ञानवरणीकर्म, दर्शनावरणी हू हते।
रह्यौ नाहिं कछु मर्म, अंतराय अंत जु भयौ ॥ ६१४ ॥
निरविकल्प रस मांहि, लीन भयौ मुनिराज सो।
जहां भेद कछु नाहिं, निजगुण पर्ययभाववैं ॥ ६१५ ॥
द्रव्य सूत्र परताप, भावसूत्र दरस्यौ वहां।
गयौ सकल संताप, पाप पुन्नि दोऊ मिटे ॥ ६१६ ॥
एक भावमें भाव, लखै अनंतानंत ही।
भागे सकल विभाव, प्रगटे ज्ञानादिक गुणा ॥ ६१७ ॥
अपनों रूप निहार, केवलके सन्मुख भयौ।
कर्मगये सब हारि, लरि न सकै जासैं न कौ ॥ ६१८ ॥
एकहि अर्थ लीन, एकहि शब्द माहिं जो।
एकहि योग प्रवीन, एकहि व्यंजन धारियौ ॥ ६१९ ॥
एकत्व नाम अभेद, नाम वितर्क सिधंतकौ।
निराविचार निरवेद, दूजौ पायो इह कह्यौ ॥ ६२० ॥

- [illegible] मे। २ हवे।

जहाँ विचार न कोय, भागे विकलप जाल सहु ।
क्षीणकषायी होइ, ध्यानारूढ़ भयौ मुनी ॥ ६२१ ॥
दूजौ पायो येह, गायौ गुरु आज्ञायकी ।
करै कर्मकौ छेह, अब सुनि तीजौ शुकल तू ॥ ६२२ ॥
सूक्षमकिरिया नाम, प्रगट तेरम ठाण जो ।
जो निज केवल धाम, श्रुतज्ञानीके है परे ॥ ६२३ ॥
लोकालोक समस्त, भासै केवलबोधमें ।
केवल सो न प्रशस्त, सर्व लोकमैं और कोउ ॥ ६२४ ॥
जे अघातिया नाम, गोत्र वेदनी आयु है ।
तिनकौ नाशै राम, परम शुकल केवलयकी ॥ ६२५ ॥
पच्यासी प्रकृती जु, जिनके ठाणैं तेरमैं ।
जरी जेवरी सी जु, तिनकूं नाशै सो प्रभू ॥ ६२६ ॥
सूक्षमक्रियाप्रवृत्ति, ध्यावै तीजौ शुकल सो ।
वादरजोग निवृत्ति, कायजोग सूक्षम रहै ॥ ६२७ ॥
करै जु सूक्षम जोग, तेरम गुणके छेहु रे ।
पावै तबै अजोग, चौदम गुणठाणैं प्रभू ॥ ६२८ ॥
तहाँ सु चौथौ ध्यान, है जु समुच्छिन्नक्रिया ।
ताकरि श्रीभगवान, बहत्तरि तेरा हतै ॥ ६२९ ॥
गई प्रकृति समस्त, सौ ऊपरि अड़ताल जे ।
भये भाव जड़ अस्त, चेतन गुण प्रगटे सबै ॥ ६३० ॥
करनी सकल उठाय, कृत्यकृत्य हूवौ प्रभू ।
सो चौथौ शिवदाय, परम शुकल जानौं भया ॥ ६३१ ॥
पंच लघुक्षर काल, चौदम ठाणैं थिति करै ।
रहित जगत जंजाल, जगत शिखर राजै सदा ॥ ६३२ ॥
बहुरि न आवै सोय, लोकशिखामणि जगतनैं ।
त्रिभुवनको प्रभु होय, निराकार निर्मल महा ॥ ६३३ ॥
सबकी करनी सोइ, जानै अंतरगत प्रभू ।
सर्वव्यापको होइ, साखीभूत अव्यापको ॥ ६३४ ॥
ध्यान समान न कोइ, ध्यान ज्ञानको मित्र है ।
सो निज ध्यानी होइ, ताको मेरी वंदना ॥ ६३५ ॥

धर्ममूल ए दोय, ध्यान प्रसंशा योग्य हैं।
आरति रुद्र न होय, सो उपाय करि जीव तू॥ ६३६॥
धर्म अगनिकौ दीप, शुकल रतनकौ दीप है।
निज गुण आप समीप, तिनकौं ध्यावौ लोक तजि॥ ६३७॥
ध्यान तनूं विस्तार, कहि न सकै गणधर मुनी।
कैसे पावैं पार, हम से अलपमती भया॥ ६३८॥
तप जप ध्यान निमित्त, ध्यान समान न दूसरौ।
ध्यान धरौ निज चित्त, जाकरि भवसागर तिरौ॥ ६३९॥
तपकूं हमरी ढोक, जामैं ध्यान जु पाइये।
मेटै जगकौ शोक, करै कर्मकी निर्जरा॥ ६४०॥
अनसन आदि पवित्र, ध्यान लगै तप गाइया।
बारा भेद विचित्र, सुनों अबै समभाव जो॥ ६४१॥

इति द्वादश तप निरूपनम।

समभाव वर्णन।

छप्पय छंद।

राग दोष अर मोह, एहि रोकैं समभावैं।
जिनकरि जगके जीव, नाहि शिवथानक पावैं॥
तेरा प्रकृति जु राग, दोषकी बारा जानों।
मोहतनी हैं तीन, ए अट्ठाईस बखानों॥
एक मोहके भेद दो, दर्शन चारित्र मोह ए।
दर्शनमोह मिथ्यात भव, जहां न सम्यक सोहए॥ ६४२॥
राग द्वेष ए दोय, जानि चारित्र जु मोहा।
इनकरि तप नहीं बनत, एह पापी पर द्रोहा॥
इनकी प्रकृति पचीस, तेहि तजि आतमरामा।
छांडो तीन मिथ्यात, यही दोषनिके धामा॥
स्वपर विवेक विचार बिना, धर्म अधर्म न जो लखै।
[illegible]

दूजौ मिश्र मिथ्यात, होय तीजे गुण ठाणें ।
जहां न एक स्वभाव, शुद्ध आतम नहिं जाणें ॥
सत्य असत्य प्रतीति, होय दुविधामय भावें ।
ताहि त्यागि गुणखानि, शुद्ध निजभाव लखावै ॥
तीजे समय प्रकृति मिथ्यात, समकितमैं उदवेग कर (?) ।
मलौ दोयतैं तीसरी, तौपन चंचलभाव धर ॥ ६४४ ॥

दोहा ।

कहे तीन मिथ्यात ए, दरशन मोह विकार ।
अब चारित्र जु मोहकौं, भेद सुनौ निरधार ॥ ६४५ ॥
कही कषाय जु षोडसी, नो-कषाय नव भेलि ।
ए पच्चीसौं जानिये, राग दोषकी केलि ॥ ६४६ ॥
चउ माया चउ लोभ अर, हासि रती त्रय वेद ।
ए तेरा हैं रागकी, देंहि प्रकृति अति खेद ॥ ६४७ ॥
च्यारि क्रोध अर मान चउ, अरति शोक भय जानि ।
दुरगंधा ये द्वादशा, प्रकृति दोषकी मानि ॥ ६४८ ॥
लगीं अनादि जु कालकी, भरमावैं जु अनंत ।
विनसैं भव्यनिके भया, हैं न अभविके अंत ॥ ६४९ ॥
रोकै सम्यकदृष्टिकौं, कोकै सकल विभाव ।
ढोकै मिथ्यादृष्टिकौं, नहिं जामैं समभाव ॥ ६५० ॥
अनंतानुबंधी इहै, प्रथम चौकरी जानि ।
त्यागै तीन मिथ्यात जुत, सो समदृष्टि मानि ॥ ६५१ ॥

छप्पय छंद ।

समकित विनु नहिं होत, शांतिरूपी समभावा ॥
चौथे गुणठाणें जु कछुक, समभाव लखावा ।
द्वितिय चौकरी बहुरि, सोहु अव्रतमय भाई ।
नाम अप्रत्याख्यान, जा छतैं व्रत्त न पाई ॥
दोय चौकरी तीन मिथ्या, त्याग होय श्रावकव्रती ।
प्रगटै गुणठाण जु पंचमैं, पापनिकी परणति हती ॥ ६५२ ॥
बढ़ै तहां समभाव, होय रागादिक नूना ।
अव्रतनैं गनि ऊंच, साधव्रतनितैं ऊना ॥

दूजौ मिश्र मिथ्यात, होय तीजे गुण ठाणें।
जहां न एक स्वभाव, शुद्ध आतम नहिं जाणें॥
सत्य असत्य मतीति, होय दुविधामय भावें।
ताहि त्यागि गुणखानि, शुद्ध निजभाव लखावै॥
तीजे समय प्रकृति मिथ्यात, समकितमें उद्वेग कर (?)।
मन्यौ दोपनै तीसरौ, तौपन चंचलभाव धर॥ ६४४॥

दोहा।

कहे तीन मिथ्यात ए, दरशन मोह विकार।
अब चारित्र जु मोहकौ, भेद सुनौ निरधार॥ ६४५॥
कही कषाय जु षोडसौ, नो-कषाय नव भेलि।
ए पच्चीसों जानिये, राग दोषकी केलि॥ ६४६॥
चउ माया चउ लोभ अर, हासि रती त्रय वेद।
ए तेरा हैं रागकी, देंहि प्रकृति अति खेद॥ ६४७॥
च्यारि क्रोध अर मान चउ, अरति शोक भय जानि।
दुरगंधा ये द्वादशा, प्रकृति दोषकी मानि॥ ६४८॥
सबौं अनादि जु कालकी, भरमावैं जु अनंत।
विनसैं भव्यनिके सबा, है न अभविके अंत॥ ६४९॥
रोकै सम्यकदृष्टिकौं, कोकै सकल विभाव।
होकै मिथ्यादृष्टिकौं, नहिं जामें समभाव॥ ६५०॥
अनंतानुबंधी इहैं, प्रथम चौकरी मानि।
त्यागै तीन मिथ्यात जुत, सो समदृष्टि मानि॥ ६५१॥

छप्पय छंद।

समकित विनु नहिं होत, शांतिरूपी समभावा॥
चौथे गुणठाणें जु कछुक, समभाव लग्यावा।
द्वितिय चौकरी बहुरि, सोहु अव्रतमय भाई।
नाम अप्रत्याख्यान, जा छतें व्रत न पाई॥
होय चौकरी तीन मिथ्या, त्याग होय श्रावकव्रती।
प्रगटै गुणठान जु पंचमें, पापनिकी परणति हती॥ ६५२॥
यहै तहां समभाव, होय रागादिक नूना।
अव्रतनें गति ऊंच, मात्रव्रतनितें ऊना॥

तृतिय चौकरी जांनि, नाम है प्रत्याखानी ।
रोकै मुनिव्रत एह, ठाण छट्टो शुभध्यानी ॥
तीन चौकरी तीन मिथ्या, छांडि साधु है संजमी ।
वृद्धि होय समभावई, मन इंद्री सब ही दमी ॥ ६५३ ॥

दोहा ।

चौथी संजुलना सही, रोकै केवलज्ञान ।
जाके तीव्र उदैयकी, होय न निश्चल ध्यान ॥ ६५४ ॥

छप्पय छंद ।

चौथी चौकरि टरै, नाम संजुलन जबै ही ।
नो-कषाय नव भेद, नाशि जावै जु सबै ही ॥
यथाख्यात चारित्र, ऊपजै बारम ठाणें ।
पूरण तब समभाव, होय जिनसूत्र प्रमाणें ॥
क्रोध मान छल लोभ च्या-रूं एक एक चउ भेद ए ।
है षोडस नव जुक्त ये, मोह प्रकृति अति खेद ए ॥ ६५५ ॥

दोहा ।

अनंतानुबंधी प्रथम, द्वितिय अप्रत्याख्यान ।
तीजी प्रत्याख्यान है, चउथी है सँजुलान ॥ ६५६ ॥
कही चौकरी चारि ए, चारों गतिकी मूल ।
च्यारितनी सोला भई, भेद मोक्ष प्रतिकूल ॥ ६५७ ॥
हास्य अरति रति शोक भय, दुरगंधा दुखदाय ।
नो-कषाय ए नव कही, पंचवीस समुदाय ॥ ६५८ ॥
राग दोषकी प्रकृति ए, कही पचीस प्रमान ।
तीन मिथ्यात समेत ए, अट्ठाईस बखान ॥ ६५९ ॥
जायं जबै सब ही प्रया, तब पूरण समभाव ।
यथाख्यातचारित्र है, क्षीणकषाय प्रभाव ॥ ६६० ॥
मुनिके जातैं अलप है, छट्टे सातमें ठाण ।
पंद्रा प्रकृति अभावतैं, ता माफिक सम [illegible] ।
श्रावकके यातैं अल्प, पंचम ठाणें [illegible] ।
ग्यारा प्रकृ[illegible]यकों, ता [illegible]

श्रावकके अणुव्रत है, इह जानों निरधार ।
मुनिके पंच महाव्रता, समिति गुपति अधिकार ॥ ६६३ ॥
श्रावकके चौथे अलप, चौथो अव्रत ठाण ।
तहां सात प्रकृती गई, ता माफिक ही जाण ॥ ६६४ ॥
गुणठाणा समभावके, है ग्यारा तहकीक ।
चौथे सूं ले चौदमा,-तक नहिं बात अलीक ॥ ६६५ ॥
चौथे जघनि जु जानिये, मध्य पंचमे ठाण ।
छट्ठाये दशमा लगै, बढ़तो बढ़तो जाण ॥ ६६६ ॥
बारम तेरम चौदमें, है पूरण समभाव ।
जिन शासनको सार इह, भवसागरको नाव ॥ ६६७ ॥

छप्पय ।

छट्टमगो जे........................जुगल मुनीके जाणा ।
तिनको सुनहु विचार, जैनशासन परवाणा ॥
छट्टम सत्तम ठाण, प्रकृति पंद्रा जब त्यागी ।
तीन मिथ्यात विख्यात, चौकरी इक तीन अभागी ॥
जब उपजै समभावही, श्रावकके अधिको महा ।
पै तथापि तेरा रही, तातैं पूरण नहिं कहा ॥ ६६८ ॥
रही चौकरी एक, और गनि नो-कषाय नव ।
तिनको नाश करेय, सो न पावै कोई भव ॥
छट्टे तीव्र जु उदै, सातवें मंद जु इनको ।
इनमें षट हास्यादि, आठवें अंत जु तिनको ॥
क्रोध मान अर कपट नो, वेद तीन ही नांहि यो
चौथे चौकरि लोभ सू,-क्षम दस ठाण विनाशयो । ६६९ ॥

छंद चाल ।

एकादशमा द्वादशमा, फुनि तेरम अर चौदशमा ।
समभावतनें गुणथाना, ए च्यारि कहे भगवाना ॥ ६७० ॥
ग्यारम है सकल स्वभावा, फिरि जाय तहां समभावा ।
बारमें सकल मुनीसा, समता नहिं कोइ अधीना ॥ ६७१ ॥
तेरम चौदम गुणठाणा, समभावनिमय बखाना ।
इनमाहि तहां है पूरा, कीये घातादिक चूरा ॥ ६७२ ॥

नहिं यथाख्यात सौं कोई, समभाव सरूपी सोई ।
इह सम उतपत्ति बताई, रागादिक नाश कराई ॥ ६७३ ॥
अब सुनि सम लक्खण संता, जा विधि भाषैं भगवंता ।
जीवौं मरिवौ सम जानैं, अरि मित्र समान बखानैं ॥ ६७४ ॥
सुख दुख अर पुण्य जु पापा, जानैं सम ज्ञान-प्रतापा ।
सब जीव समान विचारैं, अपने से सर्व निहारैं । ६७५ ॥
चिंतामणि पाहन तुल्या, जिनके समभाव अतुल्या ।
सुरगति अर नर्क समाना, सब राव रंक सम जाना ॥ ६७६ ॥
जिनके घरमैं नहिं ममता, उपजी सुखसागर समता ।
बन नगर समान पिछानैं, सेवक साहिब सम जानैं ॥ ६७७ ॥
समसान महल सम भावैं, जिनके न विषमता आवै ।
है लाभ अलाभ समाना, अपमान मान सम जाना ॥ ६७८ ॥
गिरि ग्रीष्म समान जिनूंके, सुर कीट समान तिनूंके ।
सुरतरु विषतरु सम दोऊ, चंदन कर्दम सम होऊ ॥ ६७९ ॥
गुरु शिष्य न भेद विचारैं, समता परिपूरण धारैं ।
जानैं सम सिंह सियाला, जिनके समभाव विशाला ॥ ६८० ॥
संपति विपता है सरिखी, लघुता गुरुता सम परखी ।
कंचन लोहा सम जाके, रंच न है विभ्रम ताके ॥ ६८१ ॥
रति अरति हानि अर हर्षा, रज सम जानैं सब कर्षा ।
खरं कुंजरं तुल्य पिछानैं, अहि फूलमाल सम जानैं ॥ ६८२ ॥
नारी नागिन सम देखैं, गृह कारागृह सम पेखैं ।
सम जानैं इष्ट अनिष्टा, सम मानैं अवनि वरिष्टा ॥ ६८३ ॥
जे भोग रोग सम जानैं, मद हर्ष रोग सम मानैं ।
रस नीरस रंग कुरंगा, सुभसद कुसबद सम अंगा ॥ ६८४ ॥
शीतल अर उष्ण समाना, दुरगंध सुगंध समाना ।
नहिं रूप कुरूप जु भेदा, जिनके समभाव निवेदा ॥ ६८५ ॥
धनी अर निरधन दोई, कछु भेदभाव नहिं होई ।
पटरानी अर इंद्रानी, अति दीन नारि सम जानी ॥ ६८६ ॥
इंद्र नागेन्द्र नरेन्द्रा, पुनि सर्वोत्तम अहमिंद्रा ।
सूक्षम जीवनि सम देखैं, कछु भेद भाव नहिं पेखैं ॥ ६८७ ॥

* [illegible]

थुति निंदा तुल्य गिनैं जो, पापनिके पुंज हनैं जो ।
कवि कुंप कृष्ण सम तुल्या, पायौ समभाव अतुल्या ॥ ६८८ ॥
गिना उपसर्ग समाना, वैरी बांधव सम माना ।
जिनके दिन शुद्ध मरीग्या, सीखी सद्गुरुकी सीखा ॥ ६८९ ॥
वंदै निंदै सो सरिखौ, समभावन तन जिन परिखौ ।
समभावन पूरण भगट्यौ, मिथ्यात महाभ्रम विघट्यौ ॥ ६९० ॥
जिनकी भांति शांत सुमुद्रा, रौद्र सु त्यागी अति रुद्रा ।
चीता मृगवर्ग न मारै, अति प्रीति परस्पर धारै ॥ ६९१ ॥
गरुड़ा नहिं नाग विनाशै, नागा नहिं दादेर नासै ।
उंदर मारै न विडाला, पंखिनसौं प्रीति विशाला ॥ ६९२ ॥
नर विद्याधर नर कोई, सुर असुर न बाधक होई ।
काहूई राव न दंडै, दुरजन दुरजनता छंडै ॥ ६९३ ॥
काहूके चोर न पैसे, चोरी होवै कहु कैसे ।
अधि समता धारक मुनिकौं, त्यागी पापी पापनिकौं ॥ ६९४ ॥
दाढिनके चोर न चालै, हिंसक हिंसा सब डालै ।
भूता नहिं आगन पावैं, राक्षस व्यंतर भजि जावैं ॥ ६९५ ॥
दंगर न चलै सु किसीके, ये है परभाव रिसीके ।
कोहू काहू नहिं मारै, सब जीव मित्रता धारै ॥ ६९६ ॥
हरिनी मृगपतिके छावा, देखै निज सुत समभावा ।
बाघनिहू गाय चुखावै, मार्जारी हंस खिलावै ॥ ६९७ ॥
स्याली अर मींढ़ा इकठे, नाहर अर बकरा बइठे ।
काहूको जोर न चालै, समभाव दुष्टनिकौं टालै ॥ ६९८ ॥
इह प्रभु सुविख्याकपा, निर्दोष विराग अनूपा ।
अति शांतिभावको मूला, ममतां नहिं जिन अनुकूला ॥ ६९९ ॥
नहिं ममता पर है कोऊ, सब मुनिकौं मार सु होऊ ।
जो ममताकी परित्यागा, सो कहिये सम बड़भागा ॥ ७०० ॥
सब इंद्रीको सु निरोधा, सो दम कहिये अविरोधा ।
मनतैं क्रोधादि नशाया, दमतैं भोगादि भगाया ॥ ७०१ ॥
सब दुख निरवाण सदाया, काहू थाणी नहिं माया ।
सब जैनसूत्र समरूपा, सम्यक जिनेश्वर भूपा ॥ ७०२ ॥

---

१ [illegible] । २ [illegible] । ३ [illegible] ।

लहै, क्षायिक तुरत हि भववन दहै।
य, क्षायिक सो नहिं सम्यक कोय ॥ ७२८ ॥
रूप, तीन प्रकार कह्यो जिनभूप।
, तीन मिथ्यात उपशमैं तहां ॥ ७२९ ॥
मानि, जिनवानी उरमैं परवानि।
यान, ए पांचों क्षय हैं दुखदात ॥ ७३० ॥
, दूजो क्षय उपशम है तहां।
न, ए षट क्षय होवें जड़तात ॥ ७३१ ॥
र्म भया, तीजो क्षय उपशम सो लया।
प्रकार, ताके भेद सुनों निरधार ॥ ७३२ ॥
जहां, दोय मिथ्यात उपशमैं तहां।
न होय, पहलो वेदक जानों सोय ॥ ७३३ ॥
पंचों क्षय होंय विख्यात।
होय तीजेको तहां ॥ ७३४ ॥
नुसारें भणों।
प्रकृति होंय जब घात ॥ ७३५ ॥
क कहिये सोय।
छहुंको उपशम जब होय ॥ ७३६ ॥
चौथो वेदक विख्यात।
निकट भव्य जीवनिनें गहे ॥ ७३७ ॥

दोहा।

त्रिविध, वेदक च्यारि प्रकार।
क्षम भेलि करि, नवधा समकित धार ॥ ७३८ ॥
यिक सारिखौ, समकित होय न और।
श्री आनंदमय, सो सबको सिरमौर ॥ ७३९ ॥
उपशम ऊपजै, पहलो और न कोय।
के परसादतैं, पाछै क्षायिक होय ॥ ७४० ॥
क बिनु नहिं क्षय, इह निश्चैं परवानि।
दोय सम्यकदर्शन मानि ॥ ७४१ ॥
आदि, आदि अंत जुत जानि।
कको है, सादि अनंत बखानि ॥ ७४२ ॥

सम्यक चउ गतिके लहैं, कहै कहालौं कोइ।
पै तथापि बरणन करूं, संवेगादिक सोइ॥ ७१५॥
सम्यकके गुण अतुल हैं, श्रावक तिर नर होय।
मुनिव्रत जिनवर हि धारहीं, द्विज छत वाणिज होय॥ ७१६॥
संवेगो निरवेद अर, निंदन गरहा जानि।
समता भक्ति दयालुता, वात्सल्यादिक मानि॥ ७१७॥
धर्म जिनेगुर कथित जो, जीवदयामय सार।
तासों अधिक सनेह है, सो संवेग विचार॥ ७१८॥
भव तन भोग समस्तनें, विरकत भाव अवेद।
सो दूजौ निरवेद गुण, करै कर्मको छेद॥ ७१९॥
तीजो निंदन गुण कह्यौ, निजको निंदै जोइ।
मनमें पछितावौ करै, भव भरमणको सोइ॥ ७२०॥
चौथौ गरहा गुन महा, गुरुपै भाषै वीर।
अपने औगुन समकिती, नहीं छिपावै धीर॥ ७२१॥
पंचम उपशम गुण महा, उपशमता अधिकाय।
मान हरै ताहूथकी, वैर न चित्त धराय॥ ७२२॥
छट्ठौ गुण भक्ती धरै, सम्यकदृष्टी संत।
पंच परमपदकी महा, धारै सेव महंत॥ ७२३॥
सतम गुण वात्सल्य जो, जिन धर्मिनसौं राग।
अष्टम अनुकंपा गुणो, जीवदया व्रत लाग॥ ७२४॥

उक्तंच गाथा।

संवेऊ णिव्वेऊ, णिंदण गरहा य उवसमो भत्ती।
वच्छल्लं अनुकंपा, अट्ठगुणा हुंति सम्मत्ते॥

चौपई।

सप्तजीव चहुंगतिके माहीं, पावैं समकित संशय नाहीं।
पंचेन्द्री सेनी विनु कोय, और न सम्यकदृष्टी होय॥ ७२५॥
जब संसार अलप ही रहै, तब सम्यक दरशनको गहै।
अनन चौकरी तीन मिथ्यात, ए सातों प्रकृती विख्यात॥ ७२६॥
इनके उपशमतें जो होय, उपशम नाम कहावै सोय।
इनके क्षयतें क्षायिक नाम, पावै मनुज महागुण धाम॥ ७२७॥

क्षायिक मनुप विना नहिं लहै, क्षायिक तुरत हि भववन दहै ।
केवल आदि मूल इह होय, क्षायिक सो नहिं सम्यक कोय ॥ ७२८ ॥
अब सुनि क्षय उपसमकौ रूप, तीन प्रकार कह्यौ जिनभूप ।
प्रथम चौकरी क्षय है जहां, तीन मिथ्यात उपसमैं तहां ॥ ७२९ ॥
पहलौ क्षय उपसम सो जानि, जिनवानी उरमैं परवानि ।
प्रथम चौकरी पहलै मिथ्यात, ए पांचौं क्षय है दुखदात ॥ ७३० ॥
द्वै मिथ्यात उपसमैं जहां, दूजौ क्षय उपसम है तहां ।
प्रथम चौकरी द्वै मिथ्यात, ए षट क्षय होवैं जहंतात ॥ ७३१ ॥
तृतिय मिथ्यात उपसमैं भया, तीजौ क्षय उपसम सो लया ।
वेदकसम्यक च्यारि प्रकार, ताके भेद सुनौं निरधार ॥ ७३२ ॥
प्रथम चौकरी क्षय है जहां, दोय मिथ्यात उपसमैं तहां ।
तृतिय मिथ्यात उदै जब होय, पहलौ वेदक जानौं सोय ॥ ७३३ ॥
प्रथम चौकरी प्रथम मिथ्यात, ए पांचौं क्षय होय विख्यात ।
द्वितिय मिथ्यात उपसमै जहां, उदै होय तीजेकौ तहां ॥ ७३४ ॥
भेद दूसरौ वेदकतणौ, जिनमारग अनुसारैं भणौ ।
प्रथम चौकरी दोय मिथ्यात, ए षट प्रकृति होय क्षय घात ॥ ७३५ ॥
उदै तीसरौ मिथ्या होय, तीजौ वेदक कहिये सोय ।
प्रथम चौकरी मिथ्या दोय, इन छहुंकौ उपसम जब होय ॥ ७३६ ॥
उदै होय तीजौ मिथ्यात, सो चौथौ वेदक विख्यात ।
ए नव भेद सु सम्यक कहे, निकट भव्य जीवनिनैं लहे ॥ ७३७ ॥

दोहा ।

त्रै उपसम बरनै त्रिविध, वेदक च्यारि प्रकार ।
क्षायिक उपसम भेद धरि, नवधा समकित धार ॥ ७३८ ॥
सबमैं क्षायिक सारिखौ, समकित होय न और ।
अविनाशी आनंदमय, सो सबकौ सिरमौर ॥ ७३९ ॥
पहली उपसम ऊपजै, पाछैं और न होय ।
उपसमके परतापतैं, पाछैं क्षायिक होय ॥ ७४० ॥
क्षायिक बिनु नहिं मुक्तिपद, यह निश्चै उर आनि ।
[illegible] सम्यग्दर्शन [illegible] ॥ ७४१ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ७४२ ॥

सम्यकदृष्टी सर्व ही, जिनमारगके दास ।
देव धर्म गुरु तत्त्वकी, श्रद्धा अविचल भास ॥ ७४३ ॥
अनेकांत सरधा लिया, शांतभाव धर धीर ।
सप्तभंग वानी रुचै, जिनवरकी गंभीर ॥ ७४४ ॥
जीव अजीवादिक सबै, जिन आज्ञा परवान ।
जानै संसै रहित जो, धारै दृढ़ सरधान ॥ ७४५ ॥
सप्त तत्त्व षट द्रव्य अर, नव पदार्थ परतक्ष ।
अस्तिकाय हैं पंच ही, तिनको धारै पक्ष ॥ ७४६ ॥
इष्ट पंच परमेष्ठिको, और इष्ट नहिं कोय ।
मिष्ट वचन बोलै सदा, मनमैं कपट न होय ॥ ७४७ ॥
तजै अष्ट ही गर्व जो, है निगर्व गुणवान ।
पुत्र-कलत्रादिक उपरि, ममता नाहिं बखान ॥ ७४८ ॥
तृण सम मानै देहको, निजसम जानै जीव ।
धरै महा उपशांतता, त्यागै भाव अजीव ॥ ७४९ ॥
सेवै विषयनिकों तऊ, नहीं विषयसूं राग ।
वरतै गृह आरंभमें, धारि भाव वैराग ॥ ७५० ॥
कबै दशा वह होयगी, धरियेगो मुनिवृत्त ।
अथवा श्रावक वृत्त ही, करियेगो जु प्रवृत्त ॥ ७५१ ॥
धृग धृग अव्रतभावकों, या सम और न पाप ।
क्षणभंगुर विषया सबै, देहिं कुगति दुख-ताप ॥ ७५२ ॥
इहै भावना भावतो, भोगनितैं जु उदास ।
सो सम्यकदरसी भया, पावै तत्त्वविलास ॥ ७५३ ॥
सप्तम गुणके ग्रहणकों, रागी होय अपार ।
साधुनिकी सेवा करै, सो सम्यकगुण धार ॥ ७५४ ॥
साधर्मिनसौं नेह अति, नहिं कुटुंबसौं नेह ।
मन नहिं मोह-विलासमैं, गिनै न अपनी देह ॥ ७५५ ॥
जीव अनादि जु कालको, वसै देहमें एह ।
बंध्यो कर्म प्रपंचसौं, भवमें भ्रमो अछेह ॥ ७५६ ॥
त्याग जोग जगजाल सब, लेन जोग निजभाव
इह जाके निश्चै भयो, सो सम्यक परभाव ॥ ७५७ ॥

भिन्न भिन्न जानै सुधी, जड़-चेतनकौ रूप ।
त्यागै देह सनेह जो, भावै भाव अनूप ॥ ७५८ ॥
क्षीर-नीरकी भांति ये, मिलें जीव अर कर्म ।
नाहिं तथापि मिलें कदै, भिन्न भिन्न हैं धर्म ॥ ७५९ ॥
यथा सर्पकी कंचुकी, यथा खड़गकौ म्यान ।
तथा लखै बुध देहकौं, पायौ आतमज्ञान ॥ ७६० ॥
दोप समस्त वितीत जो, वीतराग भगवान ।
ता विन दूजौ देव नहिं, इह धारै सरधान ॥ ७६१ ॥
सर्व जीवकी जो दया, ताहि सरदहै धर्म ।
गुरुमाने निरग्रंथकौं, जाके रंच न भर्म ॥ ७६२ ॥
जपै देव अरहंतकौं दास भाव धरि धीर ।
रागी दोषी देवकी, सेव तजै वरवीर ॥ ७६३ ॥
रागी दोषी देवकौं, जो मानै मतिहीन ।
धर्म गिनै हिंसा विषैं, सो मिथ्या मतलीन ॥ ७६४ ॥
परिग्रह धारककौं गुरू, जो जानै जग माहिं ।
सो मिथ्यादृष्टी महा, यामैं संसै नाहिं ॥ ७६५ ॥
कुगुरु कुदेव कुधर्मकौं, जो ध्यावै हिय अंध ।
सो पावै दुरगति दुखा, करै पापकौ बंध ॥ ७६६ ॥
सम्यकदृष्टी चिंतवै, या संसार मंझार ।
सुखकौ लेश न पाइये, दीखै दुःख अपार ॥ ७६७ ॥
लक्ष्मीदाता और नहिं, जीवनिकौं जग माहिं ।
लक्ष्मी दासी धर्मकी, पापथकी विनसाहि ॥ ७६८ ॥
जैसौ उदय जु आवही, पूरव बांध्यौ कर्म ।
तैसौ भुगतैं जीव सव, यामैं होय न भर्म ॥ ७६९ ॥
पुण्य भलाई कार है, पाप बुराई कार ।
सुखदुखदाता होय यह, और न कोइ विचार ॥ ७७० ॥
निमतमात्र पर जीव हैं, इह निह्चै निरधार ।
अपने कीये आप ही, फल भुगते संसार ॥ ७७१ ॥
पुन्यथकी सुर नर हुवे, पापथकी भरमाय ।
तिर नारक दुरगति विषैं, भव भव अतिदुख पाय ॥ ७७२ ॥

पाप समान न शत्रु है, धर्म समान न मित्र।
पाप महा अपवित्र है, पुण्य कछुक पवित्र ॥ ७७३ ॥
पुण्यपापतैं रहित जो, केवल आतमभाव।
सो उपाय निरवाणको, जामैं नहीं विभाव ॥ ७७४ ॥
झूठी माया जगतकी, झूठो सब संसार।
सत्य जिनेसुर धर्म है, जा करि है भवपार ॥ ७७५ ॥
व्यंतर देवादिकनिकों, जे शठ लक्ष्मीहेत।
पूजैं ते आपद लहैं, लक्ष्मी देय न मेत ॥ ७७६ ॥
भक्ति किये पूजे थके, जो विंतर धन देय।
तौ सब ही धनवंत है, जगजन तिनकों सेय ॥ ७७७ ॥
क्षेत्रपाल चंडी प्रमुख, पुत्र कलत्र धनादि।
देन समर्थ न कोइकों, पूजैं शठ जन वादि ॥ ७७८ ॥
जो भवितव जा जीवको, जा विधान करि होय।
जाहि क्षेत्र जा कालमैं, निःसंदेह है सोय ॥ ७७९ ॥
जान्यौ जिनवर देवने, केवलज्ञान मँझार।
होनहार संसारको, ता विधि है निरधार ॥ ७८० ॥
इह निश्चै जाके भयौ, सो नर सम्यकवंत।
लखै भेद षट द्रव्यके, भावै भाव अनंत ॥ ७८१ ॥
शंका भागी चित्ततैं, भयौ निशंकित वीर।
गुण परजाय स्वभाव निज, लखैं आपमैं धीर ॥ ७८२ ॥
दृढ़ प्रतीति जिनवैनकी, सम्यकदृष्टी सोय।
जाके संसै जीवमैं, सो मिथ्याती होय ॥ ७८३ ॥

सोरठा।

जो नहिं समझी जाय, जिनवाणी अति सूक्ष्मा।
तौ ऐसे उर लाय, संदेह न आनै सुधी ॥ ७८४ ॥
बुद्धि हमारी मंद, कछु समझैं कछु नाहिं।
जो भाष्यौ जिनचंद, सो सब सत्यस्वरूप है ॥ ७८५ ॥
उदै होयगो ज्ञान, जब आवर्ण नसाइगो।
प्रगटैगो निजध्यान, तब सब जानी जायगी ॥ ७८६ ॥
जिनवानी सम और, अमृत नहिं संसारमें।
तीन भवन सिरमौर, हरै जन्म जर मरण जो ॥ ७८७ ॥

जिनधर्मिनसौं नेह, लख्यौ नेह जिनधर्ममूं।
बरसै आनंद मेह, भक्त भयौ जिनराजको ॥ ७८८ ॥
सो सम्यक धरि धीर, लई निजातम भावना।
पावै भवजल तीर, दरसन ज्ञान चरित्तनैं ॥ ७८९ ॥
ऋद्धिनमैं बड़ ऋद्धि, रतननिमैं रतन जु महा।
या सम और न सिद्धि, इह निश्चै धारौ भया ॥ ७९० ॥
योगनिमैं निज योग, सम्यक दरसन जानि तू।
हरै सदा सब शोक, है आनंदमयी महा ॥ ७९१ ॥

जोगीरासा।

वंदनीक है सम्यकदृष्टी, यद्यपि व्रत न कोई।
निंदनीक है मिथ्यादृष्टी, जो तपसी हू होई ॥ ७९२ ॥
मुक्ति न मिथ्यादृष्टी पावै, तपसी पावै सर्गा।
ज्ञानी व्रत बिना सुरपुर ले, तपधरि ले अपवर्गा ॥ ७९३ ॥
दुरगति बंध करै नहिं ज्ञानी, सम्यकभावनि माहीं।
मिथ्याभावनिमैं दुरगतिकौ, बंध होय बुधि नाहीं ॥ ७९४ ॥
समकित बिन नहिं श्रावकवृत्ती, अर मुनिव्रत हू नाहीं।
मोक्ष हु सम्यक बाहिर नाहीं, सम्यक आपहि माहीं ॥ ७९५ ॥
अंग निशंकित आदि जु अष्टा, धारै सम्यक सोई।
शंका आदि दोष मल रहिता, निरमल दरसन होई ॥ ७९६ ॥
जिनमारग भाषै जु अहिंसा, हिंसा परमत भाषै।
हिंसा-मारगकी तजि सरधा, दयाधर्म दिढ़ राखै ॥ ७९७ ॥
संदेह न जाके जिय माहीं, स्यादवादकौ पंथा।
पक्ष त्यागि एक नयवादी, सुनै जिनागम ग्रंथा ॥ ७९८ ॥
पहलो अंग निसंसै सोई, दूजौ कांक्षा रहिता।
जामैं जगकी वांछा नाहीं, आतम अनुभव सहिता ॥ ७९९ ॥
शुभकरणी करि फल नहिं चाहै, इह भव परभवके जो।
करै कामना रहित जु धर्मा, ज्ञानामृत फल ले जो ॥ १८०० ॥
इह भाष्यौ निःकांक्षित अंगा, अब सुनि तीजौ भेदा।
निरविचिकित्सा अंग है भाई, जा करि भव-भ्रम छेदा ॥ ८०१ ॥

ग्यारा प्रतिमा वर्णन ।

दोहा ।

ग्यारा प्रकृति वियोगतें, होय पंचमो ठाण ।
तब पड़िमा धारै सुधी, एकादश परिमाण ॥ ८४३ ॥
तिनके नाम सुनों सुधी, जा विधि कहै जिनंद ।
धारैं श्रावक धीर जे, तिन सम नाँहि नरिंद ॥ ८४४ ॥
दरसन प्रतिमा प्रथम है, दूजी व्रत अधिकार ।
तीजी सामायक महा, चौथी पोसह धार ॥ ८४५ ॥
सचितत्याग है पंचमी, छट्ठी दिन तिय त्याग ।
तथा रात्रि अनसन व्रता, धारै तपसों राग ॥ ८४६ ॥
जानों पाड़िमा सातवीं, ब्रह्मचर्यव्रत धार ।
तजी नारि नागिन गिनें, तजै मोह जंजार ॥ ८४७ ॥
निरारंभ है अष्टमी, नवमी परिग्रह त्याग ।
लौकिक वचन न बोलिवौ, सो दशमी बड़भाग ॥ ८४८ ॥
एकादशमी दोय विधि, क्षुल्लक ऐलि विवेक ।
है उदंडाहार द्वै, तिनमें मुनिव्रत एक ॥ ८४९ ॥
ऐलि महा उतकिष्ट हैं, ऐलि समान न कोय ।
मुनि आर्या अर ऐलि ए, लिंग तीन शुभ होय ॥ ८५० ॥
भाषी एकादश सबै, प्रतिमा नाम जु मात्र ।
अब इनकौ विस्तार सुनि, ए सब भव्य सुपात्र ॥ ८५१ ॥

चौपाई ।

प्रथम हि दरशन प्रतिमा सुणों, आतमरूप अनूप जु मुणों ।
दरशन मोक्षबीज है सही, दरशन करि शिव परसन लही ॥ ८५२ ॥
दरसन सहित मूलगुण धरै, सात विसन मन वच तन हरै ।
बिन अरहंत देव नहिं कोय, गुरु निरग्रंथ विना नहिं होय ॥ ८५३ ॥
जीवदया विन और न धर्म, इह निहचै करि टारै भर्म ।
संजम विन तप होय न कदा, इह प्रतीति धारै बुध सदा ॥ ८५४ ॥
पहली प्रतिमाकौ सो धनी, दरसनवंत कुमति सब हनी ।
आठ मूल गुण विसन जु सात, भाषे प्रथम कथनमें भ्रात ॥ ८५५ ॥

लौंन न ऊपरसे ले धीर, लौंन हु सचित गिनै वर वीर।
माटी हात धोयवे काज, लेय अचित्त दयाके काज ॥ ८७१ ॥
खोर तथा माटी जो जली, सोई लेय न काची डली।
पृथ्वीकाय विराधै नाहिं, जीव असंख कहे ता माहिं ॥ ८७२ ॥
जलकायाकी पाले दया, सर्व जीवकौं भाई भया।
अगनिकायसौं नाहिं विरोध, दयावंत पावै निज बोध ॥ ८७३ ॥
पवन करै न करावै सोय, षट कायाको पीहर होय।
नाहिं वनस्पति करै विराध, जिनशासनकी धरै अराध ॥ ८७४ ॥
विकलत्रय अर नर तिर्यंच, सबकौं मित्र रहित परपंच।
जो सचित्तकौं त्यागी होय, दयावान कहिये नर सोई ॥ ८७५ ॥
आप भखै नहिं सचित कदेय, भोजन सचित न औरहिं देय।
जिह सचित्तकौं कीयौ त्याग, जीती जीभ तज्यौ रसराग ॥ ८७६ ॥
दयाधर्म धार्यौ जिह धीर, पाल्यौ जैन वचन गंभीर।
अब सुनि छट्ठी प्रतिमा संत, जा विधि भाषी वीर महंत ॥ ८७७ ॥
द्वै मुहूर्त जब बाकी रहै, दिवस तहांतै अनशन गहै।
द्वै मुहूर्त जब चढ़ि है भान, तौं लग अनशनरूप बखान ॥ ८७८ ॥
दिनकौं शील धरै जो कोय, सो छट्ठी प्रतिमाधर होय।
खान पान नहिं रैनि मँझार, दिवस नारिकौं है परिहार ॥ ८७९ ॥
पूछै प्रश्न यहां भवि लोग, निशिभोजन अर दिनकौ भोग।
ज्ञानी जीव न कोई करै, छट्ठी कहा विशेष जु धरै ॥ ८८० ॥
ताकौ उत्तर धारौ एह, औरनिकौं व्रत न्यून गिनेह।
मन वच तन कृत कारित त्याग, करै न अनुमोदन बड़भाग ॥ ८८१ ॥
तब त्यागी कहिए मुनि माहिं, या माहीं कछु संसै नाहिं।
गमनागमन सकल आरंभ, तजै रैनिमैं नाहिं अचंभ ॥ ८८२ ॥
महाधीर वर वीर विशाल, दिनकौं ब्रह्मचर्य प्रतिपाल।
निरतीचार विचार विशेष, त्यागै पापारंभ अशेष ॥ ८८३ ॥
जैनी जिनशासनिकौ दास, जिनशासनकौ करै प्रकाश।
जो निशिभोजन त्यागी होय, छः मासी उपवासी सोय ॥ ८८४ ॥
वर्ष एकमैं हुई विचार, जावो जीव लगै विस्तार।
है उपवासनिकौ सुनि वीर, तातैं निशिभोजन तजि धीर ॥ ८८५ ॥

वस्त्र हु बहु मोले नहिं गहै, अलप वस्त्र ले आनंद लहै।
परिग्रहकों जानै दुखरूप, इह परिग्रह है पापस्वरूप ॥ ९०१ ॥
जहां परिग्रह लोभ तहां हि, या करि दया सत्य विनशाहि।
हिंसारंभ उपावै एह, या सम और न शत्रु गिनेह ॥ ९०२ ॥
तजै परिग्रह सो हि सुजान, तृष्णा त्याग करै बुधिवान।
जाकी चाह गई सो सुखी, चाह करैं ते दीखैं दुखी ॥ ९०३ ॥
बाहिज ग्रंथ रहित जग माहिं, दारिद्री मानव शक नाहिं।
ते नहिं परिग्रहत्यागी कहैं, चाह करंते अति दुख लहैं ॥ ९०४ ॥
जे अभ्यंतर त्यागैं संग, मूर्च्छा रहित लहैं निजरंग।
ते परिग्रहत्यागी हैं राम, वांछा रहित सदा सुखधाम ॥ ९०५ ॥
ज्ञानिन विन भीतरकौ संग, और न त्यागि सकैं दुख अंग।
राग दोप मिथ्यात विभाव, ए भीतरके संग कहाव ॥ ९०६ ॥
तजि भीतरके बाहिर तजै, सो बुध नवमी पड़िमा भजै।
वस्त्र मात्र है परिग्रह जहां, धातुमात्रकौ लेश न तहां ॥ ९०७ ॥
नर्म पूंजणी धारै धीर, षट कायनिकी टारै पीर।
जलभाजन राखै शुचिकाज, त्यागै धन धान्यादि समाज ॥ ९०८ ॥
काठ तथा माटीकौ जोय, और पात्र राखै नहिं कोय।
जाय बुलायो जीमैं जोय, श्रावकके घर भोजन होय ॥ ९०९ ॥
दशमी प्रतिमा धर बड़भाग, लौकिक वचनथकी नहिं राग।
विना जैनवानी कछु बोल, जो नहिं बोलै चित्त अडोल ॥ ९१० ॥
जगत काज सब ही दुखरूप, पापमूल परपंच स्वरूप।
तातैं लौकिक वचन न कहै, जिनमारगकी सरधा गहै ॥ ९११ ॥
मौन गहै जगसेती सोय, सो दशमी पड़िमाधर होय।
श्रुति अनुसार धर्मकी कथा, करै जिनेश्वर भाषी यथा ॥ ९१२ ॥
जगतकाजकौ नहिं उपदेश, ध्यावै धीरज धारि जिनेश।
बोलै अमृतवानी वीर, षट कायनिकी टारै पीर ॥ ९१३ ॥
तजै शुभाशुभ जगके काम, भयौ कामना रहित [illegible]।
जे नर करैं शुभाशुभ काज, ते नहिं लहैं [illegible] ९१४ ॥
रागद्वेष कलहके धाम, दीसैं सकल ज[illegible]
जगतरीतिमैं जे नर बसा, सो नहि [illegible] १५ ॥

तिनहूँपैं ऐलि जु निरधार, ऐलियकौ मुनि वडे विचार ।
मुनिगणमें गणधर हैं वडे, ते जिनवरके सनमुख खडे ॥ ९३१ ॥
जिनपति शुद्धरूप हैं भया, सिद्ध परें नाहिं दूजौ लया ।
सिद्ध मनुज विन और न होय, चहुंगतिमें नहि नर सम कोय ॥ ९३२ ॥
नरमें सम्यकदृष्टी नरा, तिनतें वर श्रावकव्रत धरा ।
षोडस स्वर्गलोकलौं जाहि, अनुक्रम मोक्षपुरी पहुंचाहि ॥ ९३३ ॥
पंचमठाणे ग्यारा भेद, धारें तेहि करैं अघछेद ।
इह श्रावककी रीति जु कही, निकट भव्य जीवनिनैं गही ॥ ९३४ ॥
ऊपरि ऊपरि बढ़ते भाव, विरकतभाव अधिक ठहराव ।
नींव होय मंदिरके यथा, सर्व व्रतनिके सम्यक तथा ॥ ९३५ ॥

दान वर्णन ।

दोहा ।

प्रतिमा ग्याराकौ कथन, जिन आज्ञा परवान ।
परिपूरण कीनूं भया, अब सुनि दान बखान ॥ ९३६ ॥
जिनौं दान बरनन प्रथम, अतिथिविभाग जु माहि ।
अबहू दान प्रबंध कछु, कहिहौं दूपण नाहि ॥ ९३७ ॥

नरेन्द्र छंद ।

ए भाई अचेतौ कछु इक चेतौ, आखिर जगमैं मरना है ।
धन नर हौ याहीं संग न जाहीं, तातै दान जु करना है ॥ ९३८ ॥
जिन दान न किन्हौ है अघरुद्धी, दुरगति दुख अनुसरना है ।
किरपनता पारी गडमति भारी, तिनहि न शुभगति वरना है ॥ ९३९ ॥
यामैं नहि संसा सुर प्रसंसा, विपद दान दुख हरना है ।
सो श्रावक सनावै त्याग दिवावै, पावौ धाम अमरना है ॥ ९४० ॥
धीरज गुणआला ज्ञानमाला, गहि जिनशासन सरना है ।
सोई सुख बहु भांती है जिन सांती, पावौ वर्ग अवर्ना है ॥ ९४१ ॥
इह अहतपुण्या विपद सुपुण्या, लहि सुरन शिर धरना है ।
है सम्यग्ज्ञान चारित धारा, नरवानन्द निधि धरना है ॥ ९४२ ॥

जो करवावै विधिधकी, जिनप्रतिमा बुधिवंत ।
मंदिरमें पधरावई, सो सुख लहै अनंत ॥ ९५८ ॥
जव समान जिनराजकी, प्रतिमा जो पधराय ।
किंदूरीसम देहुरो, सो हू धन्य कहाय ॥ ९५९ ॥
शिखर बंध करवावई, जिन चैत्यालय कोय ।
प्रतिमा उच्च करावई, पावै शिवपुर सोइ ॥ ९६० ॥
जल चंदन अक्षत पहुप, अर नैवेद्य सुदीप ।
धूप फलनि जिन पूजई, सो है जग अवनीप ॥ ९६१ ॥
जो देवल करि विधिधकी, करै प्रतिष्ठा धीर ।
सुर नर पतिके भोग लहि, सो उतरै भवतीर ॥ ९६२ ॥
जो जिन तीरथकी महा, यात्रा करै सुजान ।
सफल जनम ताही तनों, भाषै पुरुष प्रधान ॥ ९६३ ॥
चउ अनुयोगमई महा, द्वादशांग अविकार ।
सो जिनवाणी है भया, करै जगतथी पार ॥ ९६४ ॥
ताके पुस्तक बोधकर, लिखै लिखावै शुद्ध ।
धन खरचै या वस्तुमें, सो होवै प्रतिबुद्ध ॥ ९६५ ॥
ग्रंथनिकूं मूढ़े करै, करवावै धरि चित्त ।
भले भले वस्त्रानिविषैं, राखै महा पवित्त ॥ ९६६ ॥
जीरण ग्रंथनिके महा, जतन करै बुधिवान ।
ज्ञानदान देवै सदा, सो पावै निरवान ॥ ९६७ ॥
जीरण जिनमंदिरतणी, मरमन जो मतिवान ।
करवावै अति भक्तिसों, सो सुख लहै निदान ॥ ९६८ ॥
शिखर चढ़ावै देहुरां, धन खरचै या भांति ।
कलश धरै जिनमंदिरां, पावै पूरण शांति ॥ ९६९ ॥
छत्र चमर चंद्रोदिका, बहु उपकरणां कोय ।
पधरावै चैत्यालये, पावै शिवपुर सोय ॥ ९७० ॥
दीप करावै द्रव्य दे, धवलावै जिनगेह ।
धुजा चढ़ावै देवलां, पावै धाम विदेह ॥ ९७१ ॥
जो जिनमंदिर कारनैं, धरती देय सु वीर ।
सो पावै अटलधरा, मोक्ष धाम गंभीर ॥ ९७२ ॥

मरम्मत करावे बरदर एर्ड । २ दमक ।

तीरथकारक चक्र जु धारक, देहि सकैं इह दान निधाना ।
और सबै निज शक्ति प्रमाण, करैं शुभदान महा मतिवाना ॥ ९७८ ॥

सोरठा ।

कोऊ कुबुद्धी क्रूर, चितवै चितमैं इह भया ।
लहिहौं धन अतिपूर, तब करिहूं दानहि विधी ॥ ९७९ ॥
अब तौ धन कछु नाहिं, पास हमारे दानकौं ।
किसविधि दान कराहिं, इह मनमैं धरि कृपण है ॥ ९८० ॥
यो न विचारै मूढ़, शक्ति प्रभावै त्याग है ।
होय धर्म आरूढ़, करै दान जिनवैन सुनि ॥ ९८१ ॥
कछु हू नाहिं जुरै जु, तौहू रोटी एक ही ।
ज्ञानी दान करै जु, दान बिना धृग जनम है ॥ ९८२ ॥
रोटी एक हु नाहिं, तौहू रोटी आध ही ।
जिनमारगके माहिं, दान बिना भोजन नहीं ॥ ९८३ ॥
एक ग्रास ही मात्र, देवै अतिहि अशक्त जो ।
अर्ध ग्रास ही मात्र, देवै परि नहिं कृपण है ॥ ९८४ ॥
गेह मसान समान, भाषै किरपणकौ श्रुति ।
मृतक समान बखान, जीवत ही कृपणा नरा ॥ ९८५ ॥
जानौ गृद्ध समान, ताके सुत दारादिका ।
जो नहिं करै सुदान, ताकौ धन आमिष समा ९८६ ॥
जैसैं आमिष खाय, गिरध मसाणा मृतककौं ।
तैसैं धन विनशाहिं, कृपणतनों सुतदारका ॥ ९८७ ॥
सबकौं देनौ दान, नाकारो नहिं कोइहू ।
करुणाभाव प्रधान, सब ही आतमराम हैं ॥ ९८८ ॥
सब ही प्राणिनकौं जु, अन्न वस्त्र जल औषधी ।
सूखे तृण विधिसौं जु, देनैं तिरजंचानिकौं ॥ ९९० ॥
गुनी देखि अति भक्ति, भावथकी देनौं महा ।
दान भक्ति अरु मुक्ति, कारणमूल कहैं गुरू ॥ ९९१ ॥
पर परणतिकौ त्याग, ता सम आन न दान कोउ ।
देहादिककौ राग, त्यागैं ते दाता बड़े ॥ ९९२ ॥
कह्यौ दान परभाव, अब सुनि जलगालण विधी ।
छांडो शुगय स्वभाव, जलगालण विधि आदरौ ॥ ९९३ ॥

जो जन जैनधर्म प्रतिपाला, ता धरि जलकी है इह चाला।
पानी प्रासुक तातो नीरा, मरजादामें वरतें वीरा ॥ ७ ॥
सबही श्रावककौ आचारा, जलगालन विधि है निरधारा।
जे अणछाण्यौ पीवें पाणी, ते धीवर वागुर सम जाणी ॥ ८ ॥
बिन गाल्यो औरि नहिं प्यावै, अभख न खाजै और न खवाजै।
तजि आलस अर सब परमादा, गालै जल चित धरि अहलादा ॥ ९ ॥
जलगालन नहिं चित्त करै जो, जल छाननमें चित्त धरै जो।
अनछान्योंकी बूंद हु धरती, नाखै नाहिं कदाचित बरती ॥ १० ॥
बूंद परै तो ले प्रायश्चित्ता, जाके घटमें दया पवित्ता।
यह जलगालनकी विधि भाई, गुरु आज्ञा अनुसार बताई ॥ ११ ॥

दोहा।

अब सुनि रात्रि अहारकौ, दोष महा दुखदाय।
द्वै महूरत दिन जब रहै, तबतैं त्याग कराय ॥ १२ ॥
दिवस महूरत द्वै चढ़ै, तबलौं अनसन होय।
निशि अहार परिहार सो, व्रत न दूजो कोय ॥ १३ ॥
निशिभोजनके त्यागतैं, पावै उत्तम लोक।
सुर नर विद्याधरनके, लहै महासुख थोक ॥ १४ ॥
जे निशि भोजन धारका, तेहि निशाचर जान।
पावैं नित्य निगोदके, जनम महा दुखखानि ॥ १५ ॥
निशि वासरको भेद नहिं, खान तृप्ति नहिं होय।
सो काहेके मानवा, पशुहूंतें अधिकोय ॥ १६ ॥
नाम निशाचर चोरको, चोर समाना ये हि।
करैं निशामें पापिया, हरैं धर्मधन जे हि ॥ १७ ॥
बहुरि निशाचर नाम है, राक्षसको मुनिगाहिं।
राक्षस सम जो नर दुखी, रात्री अहार कराहिं ॥ १८ ॥
दिन भोजन तजि रैनिमें, भोजन करै विमूढ़।
ते उल्लू सम जानिये, महापाप आरूढ़ ॥ १९ ॥
मांस अहारी मानिये, निशिभोजी मतिहीन।
जनम जनम पशु पावैं, लहैं कुगति दुखदीन

नाराच छंद ।

उलूक काक औ विलाव श्वान गर्द्भादिका। गहै कुजन्म पापिया जु ग्राम शूकरादिका।
कुछोरछोवि माहिं कीट होय रात्रिभोजका। तजैं निशा अहारकों विमुक्ति पंथ सोजका।
निशा महैं करैं अहार ते हि मूढ़धी नरा। लहैं अनेक दोषकूं सुधर्महीन पामरा।
जु कीट माछरादिका भखैं अहार माहिं ते। महा अधर्म धारिकै जु नर्क माहिं जाहिं ते॥

छंद चाल ।

निशिमाहीं भोजन करही, ते पिंड अभखतैं भरही ।
भोजनमें कीड़ा खाये, तातैं बुधि मूल नशाये ॥ २३ ॥
जो जूंका उदरैं जाये, तौ रोग जलोदर पाये ।
मांखी भोजनमैं आवै, ततखिन सो वमन उपावै ॥ २४ ॥
मकरी आवै भोजनमैं, तौ कुष्टरोग होय तनमैं ।
कंटक अरु काठजु खंडा, फासि है जो गले परचंडा ॥ २५ ॥
तौ कंठविथा विस्तारै, इत्यादिक दोष निहारै ।
भोजनमें आवै बाला, सुर भंग होय ततकाला ॥ २६ ॥
निशिभोजन करके जीवा, पावैं दुख कष्ट सदीवा ।
होवैं अति ही जु विरूपा, मनुजा अति विकल कुरूपा ॥ २७ ॥
अति रोगी आयुस थोरा, है भागहीन निरजोरा ।
आदर रहिता सुख रहिता, अति ऊंच नीचता सहिता ॥ २८ ॥
इक बात सुनौं मनलाई, हथनापुर पुर है भाई ।
तामैं इक हूतौ विप्रा, मिथ्यामत धारक छिप्रा ॥ २९ ॥
रुद्रदत्त नाम है जाको, हिंसामारग मत ताकौ ।
सो रात्रि अहारी मूढ़ा, कुगुरनके मत आरूढ़ा ॥ ३० ॥
इक निशिकों मोंदू भाई, रोटीमैं चींटी खाई ।
बैंगनमैं मींढक खायौ, उत्तम कुल तिहँ विनशायौ ॥ ३१ ॥
कालान्तर तजि निज प्राणा, सो घूघू भयौ अयाणा ।
फुनि मरि करि गयौ जु नर्को, पायौ अति दुख संपर्को ॥ ३२ ॥
तीसरि नरकजुतैं कागा, वह भयौ पापपथ लागा ।
पहुँचे नर्कजुके कष्टा, पायौ ताने जु सपष्टा ॥ ३३ ॥
फुनि भयौ विडाल सु पापी, जीवनिकूं अति संतापी ।
सो गयौ नर्कमैं दुष्टा, हिंसा करिके यौ पुष्टा ॥ ३४ ॥

१ कफाजेर्द । २ नौंच ।

सिद्धक्षेत्र वंदे अधिकाय, जिनसिद्धांत सुनै अधिकाय ।
केतौ काल गयौ इह भांति, समै पाय धारी उपसांति ॥ ४९ ॥
शुभ भावनितैं छांड़े प्रान, पायौ षोडशस्वर्ग वियान ।
ऋद्धि महा अणिमादिक लई, आयु बीस द्वै सागर भई ॥ ५० ॥
चयौ स्वर्गथी सो परवीन राजपुत्र हूवौ शुभलीन ।
देश अवंती उत्तम बसै, नगर उजैणी अति ही लसै ॥ ५१ ॥
तहां नरपती पृथ्वीमल्ल, जिनधर्मी सम्यक्ति अचल्ल ।
प्रेमकारिणी रानी महा, ताके उदर जन्म सो लहा ॥ ५२ ॥
नाम सुधारस ताकौ भयौ, मात पिता अति आनंद लयौ ।
अनुक्रम वर्ष सातकौ जबै, विद्या पाने सौंप्यौ तबै ॥ ५३ ॥
शस्त्र शास्त्रमें बहु परवीन, भयौ [illegible] समकित लीन ।
जोबनवंत भयौ [illegible] [illegible] सन्हार ॥ ५४ ॥
एक दिवस [illegible] भयौ ।
ताको लखि उपजो वैराग [illegible] बड़भाग ॥ ५५ ॥
चंद्रकीति मुनिके [illegible] दीक्षा लीनी शिरनाय ।
अभ्यंतर बाहिर चौबीस [illegible] नमि शीश ॥ ५६ ॥
पंच महाव्रत [illegible] परवीन ।
सुकल ध्यान करि कर्म [illegible] अति गुणराशि ॥ ५७ ॥
बहुत भव्य उपदेशे जिन [illegible] तिने ।
शेष अघातियकौ करि नाश, [illegible] धाम ॥ ५८ ॥
निशिभोजनतें [illegible] दुभये ।
तिनके फलकौ वर्णन करी, [illegible] करी । ५९ ॥

छप्पय ।

इक चंडाली सुराशि व्रत सेठनिपै लीनौ [illegible]
मन वच तन दृढ़ होय त्यागि निशिभोजन [illegible]
व्रततनों परभाव त्याग तन अंतिज जाया
वाही सेठनिके जु उदर उपनी वर काया ।
गहि जैनधर्म धरि शीलव्रत, पापकर्म सब ही [illegible]
लहि सुरगलोक नरलोक सुख, लोकसिखरमें [illegible]
एक हुतौ जु शृगाल कर सुदरशन मुनिराया ।
त्यागौ निशिकौ खान-पान जिनधर्म सुहाया ।

मरि करि हूवो सेठ नाम प्रीतंकर जाको।
अद्भुत रूपनिधान धर्ममें अति चित ताको।
भयो मुनीश्वर सब त्यागिके, केवल लहि शिवपुर गयो।
नहिं रात्रिभुक्ति परित्याग सम, और दूसरो व्रत लयो॥ ६१॥

सोरठा।

निसि भोजन करि जीव, हिंसक है चहुँगति भ्रमै।
जे त्यागें जु सदीव, निसिभोजन ते शिव लहैं॥ ६२॥
अर्ध उपरि उपवास,-मासी धीरै तिन तनी।
जे जन है जिनदास, निसिभोजन त्यागें सुधी॥ ६३॥
दिवस नारिको त्याग, निसिको भोजन त्यागई।
निशदिन जिनमत राग, सदा धरमरति बुधा॥ ६४॥
एक मासमें भ्रात, पन्द्र उपास फले फला।
जे निसि माहिं न खात, च्यारि आहार धीरना॥ ६५॥
निसिभोजन सम दोष, भयो न है है होयगो।
महापापको कोष, मद्य मांस आहार सम॥ ६६॥
त्यागें निसिको खान, तिनें हमारी वंदना।
देहीं अभय प्रदान, जीवगननिको ते सदा॥ ६७॥
पालत धर्म सुवीर, निसिभोजनके अवगुना।
जानें श्रीमहावीर, केवलज्ञान धरन नर॥ ६८॥

रत्नत्रय वर्णन।

अब सुनि दरसन ज्ञान, चरण मोक्षके मूल हैं।
रतनत्रय निज भाव, [illegible] शिव मोक्ष न है कदा॥ ६९॥
सम्यग्दर्शन सो हि, आतम रुचि सरधा सदा।
ज्ञानो निश्चय सो हि, लखै शुद्ध स्वभावको॥ ७०॥
[illegible]
[illegible]॥ ७१॥

[illegible]
[illegible]

दर्शन ज्ञान चरण सेवन करि, केवल उतपति करनौ भ्रम हरि ।
सो सम्यक परभावन होई, परभावनकौ लेश न कोई ॥ ८८ ॥
दान तपो जिनपूजा करिकै, विद्या अतिशय आदि जु धरिकै ।
जैनधर्मकी महिमा कारै, सो सम्यकदरशन गुण धारै ॥ ८९ ॥
ए दरसनके अष्ट जु अंगा, जे धारैं उर माहिं अभंगा ।
ते सम्यक्ती कहिये वीरा, जिनआज्ञा पालक ते धीरा ॥ ९० ॥
सेवनीय है सम्यकज्ञानी, माया मिथ्या ममता भानी ।
सदा आतमरस पीवैं धन्या, ते ज्ञानी कहिये नहिं अन्या ॥ ९१ ॥
यद्यपि दरशन ज्ञान न भिन्ना, एकरूप हैं सदा अभिन्ना ।
सहभावी ए दोऊ भाई, तौ पनि किंचित भेद धराई ॥ ९२ ॥
भिन्न भिन्न आराधन तिनका, ज्ञानवंतके होई जिनका ।
एक चेतनाके द्वै भावा, दरसन ज्ञान महा सुभभावा ॥ ९३ ॥
दरसन है सामान्य स्वरूपा, ज्ञान विशेष स्वरूप निरूपा ।
दरसन कारन ज्ञान सु कार्या, ए दोऊ न लहैं हि अनार्या ॥ ९४ ॥
निराकार दर्शन उपयोगा, ज्ञान धरै साकार नियोगा ।
दोऊ प्रश्न करै इह भाई, एककाल उत्पत्ति बताई ॥ ९५ ॥
दरसन ज्ञान दुहूनकी नातैं, कारन कारिज होइ न तातैं ।
ताकौ समाधान गुरु भाषैं, जे धारैं ते निजरस चाखैं ॥ ९६ ॥
जैसें दीपक अर परकासा, एककाल दुहुंकौ प्रतिभासा ।
पर दीपक है कारनरूपा, कारिजरूप प्रकासनरूपा ॥ ९७ ॥
तैसें दरसन ज्ञान अनूपा, एक काल उपजैं निजरूपा ।
दरसन कारनरूपी कहिये, कारिजरूपी ज्ञान सु लहिये ॥ ९८ ॥
विद्यमान हैं [illegible] सबै हीं, अनेकांतमय [illegible] ही ।
तिनकौ जानपनौ जो भाई, [illegible] विभ्रम मोह नसाई ॥ ९९ ॥
जो विपरीत रहित निजरूपा, आतमभाव अनूप निरूपा ।
सो है सम्यकज्ञान [illegible], [illegible] ॥ १०० ॥
[illegible] सम्यकज्ञान [illegible] ।
[illegible] ॥ १०१ ॥
[illegible]
[illegible]

जीवाजीवादिक नव अर्था, तिनकी श्रद्धा विन सब व्यर्था।
है श्रद्धान रहित विपरीता, आतमरूप अनूप अजीता ॥ ७३ ॥
सकल वस्तु हैं उभय स्वरूपा, अस्ति-नास्तिरूपी जु निरुपा।
अनेकांतमय नित्य अनित्या, भगवतने भाषे सहु सत्या ॥ ७४ ॥
तामैं संसै नाहिं जु करनौ, सम्यक दरसन ही दिढ़ धरनौ।
या भवमैं विभवादि न चाहै, परभव भोगनिकूं न उमाहै ॥ ७५ ॥
चक्री केशवादि जे पदई, इंद्रादिक शुभ पदई गिनई।
कबहू वांछै कछु हि न भोगा, ते कहिये भगवतके लोगा ॥ ७६ ॥
जो एकांतवाद करि दूषित, परमत गुण करि नाहिं जु भूषित।
ताहि न चाहै मन वच तन करि, ते दरसन धारी उरमैं धरि ॥ ७७ ॥
क्षुधा तृषा अर उष्ण जु सीता, इनहि आदि सुखभाव वितीता।
दुखकारणमैं नाहिं गिलानी, सो सम्यकदरसन गुणखानी ॥ ७८ ॥
लोकविषैं नहिं मूढ़तभावा, श्रुति अनुसार लखै निरदावा।
जैनशास्त्र विनु और जु ग्रंथा, शास्त्राभास गिनै अघपंथा ॥ ७९ ॥
जैनसमय विनु और जु समया, समयाभास गिनै सहु अदया।
विनु जिनदेव और हैं जेते, लखै जु देवाभास सु ते ते ॥ ८० ॥
श्रद्धानी सो तत्त्वविज्ञानी, धरै सुदर्शन आतमध्यानी।
करै धर्मकी जो थद्धवारी, सदा सु मार्दव आर्जवधारी ॥ ८१ ॥
पर औगुन ढांकै बुधिवंता, सो सम्यकदरशनधर संता।
काम क्रोध मद आदि विकारा, तिनकरि भये विकलमति धारा ॥ ८२ ॥
न्यायमार्गतैं विचल्यौ चाहै, मिथ्यामारगकौं जु उमाहै।
तिनकौं ज्ञानी थिराचित कारै, सुक्तथकी भ्रमभाव निवारै ॥ ८३ ॥
आप सुथिर औरैं थिर कारै, सो सम्यकदरशन गुण धारै।
दयाधर्ममैं जो हि निरंतर, करै भावना उर अभ्यंतर ॥ ८४ ॥
शिवसुर लक्ष्मी कारण धर्मो, जिनभाषित भवनाशिन पर्मो।
तासौं प्रीति धरै अधिकारी, अर जिनधर्मिनसूं बहुतेरी ॥ ८५ ॥
प्रीति करै सो दर्शनधारी, पावै लोकाग्रिमधर अविकारी।
यथा सुरनके बछरा ऊपरि, गौ हित राखै मनवचतन करि ॥ ८६ ॥
तथा धर्म धर्मिनिसौं प्रीता, आके, मानै बछरा औमी।
आनद निर्दन्न करणौ माहि, अतिमयधन मवा सुभवारी ॥ ८७ ॥

दर्शन ज्ञान चरण सेवन करि, केवल उजवलनि करनौ भ्रम हरि।
सो सम्यक परभाव न होई, परभावनको लेश न कोई ॥ ८८ ॥
दान तपो जिनपूजा करिकै, विद्या अतिशय आदि जु धरिकै
जिनधर्मकी महिमा करै, सो सम्यकदरसन गुण धरै ॥ ८९ ॥
ए दरसनके अष्ट जु अंगा, जे धारैं उर माहि अभंगा
ते सम्यकी कहिये वीरा, जिनआज्ञा पालक ते धीरा ॥ ९० ॥
सेवनीय है सम्यकज्ञानी, माया मिथ्या ममता भानी।
सदा आतमरस पीवैं धन्या, ते ज्ञानी कहिये नहिं अन्या ॥ ९१ ॥
यद्यपि दरसन ज्ञान न भिन्ना, एकरूप हैं सदा अभिन्ना
सहभावी ए दोऊ भाई, तौ पनि किंचित भेद धराई ॥ ९२ ॥
भिन्न भिन्न आराधन तिनका, ज्ञानवंतके होई जिनका।
एक चेतनाके द्वै भावा, दरसन ज्ञान महा सुभभावा ॥ ९३ ॥
दरसन है सामान्य स्वरूपा, ज्ञान विशेष स्वरूप निरूपा।
दरसन कारन ज्ञान सु कार्या, ए दोऊ न लहैं हि अनार्या ॥ ९४ ॥
निराकार दर्शन उपयोगा, ज्ञान धरै साकार नियोगा।
कोऊ प्रश्न करै इह भाई, एककाल उत्पत्ति सदाई ॥ ९५ ॥
दरसन ज्ञान दुहुनकी तातैं, कारन कारिज होइ न तातैं।
ताकौ समाधान गुरु भाषैं, जे धारैं ते निजरस चाखैं ॥ ९६ ॥
जैसैं दीपक अर परकासा, एककाल दुहुंकौ प्रतिभासा।
पर दीपक है कारनरूपा, कारिजरूप प्रकाशनरूपा ॥ ९७ ॥
तैसैं दरसन ज्ञान अनूपा, एक काल उपजैं निजरूपा।
दरसन कारनरूपी कहिये, कारिजरूपी ज्ञान सु गहिये ॥ ९८ ॥
विद्यमान हैं तत्त्व सबै ही, अनेकांततारूप फबै ही।
तिनकौ जानपनौ जो भाई, संशय विभ्रम मोह नसाई ॥ ९९ ॥
जो विपरीत रहित निजरूपा, आतमभाव अनूप [illegible]।
सो है सम्यकज्ञान महंता, निजकौ जानपनौ [illegible] ॥
अष्ट अंगकरि सोभित सोई, सम्यकज्ञान [illegible]
ते धारौ भवि आठौ शुद्धा, जिनवाणी [illegible] ॥
शुद्धता पहलो अंगा, [illegible]
[illegible]द्धता अंग द्वितीय [illegible]

शब्द अर्थ दुहूकी निर्मलता, मन वच तन काया निहचलता।
सो है तीजौं अंग विशुद्धा, सम्यक्ती धारै मतिशुद्धा॥ १०३॥
कालाध्ययन चतुर्थम अंगा, ताकौ भेद सुनौं अतिरंगा।
जा विरियां जो पाठ उचित्ता, सोही पाठ करै जु पवित्ता॥ १०४॥
विनय अंग है पंचम भाई, विनयरूप रहिवौ सुखदाई।
सो उपधान है छट्टम अंगा, योग्य क्रिया करिवौ जु अभंगा॥ १०५॥
जिनभाषितकौं अंगीकरनौं, सो उपधान अंगकौ धरनौं।
सत्तम है बहुमान विख्याता, ताकौ अर्थ सुनूं तजि घाता॥ १०६॥
बहु सतकार सु आदर करिकै, जिनआज्ञा पालै उर धरिकै।
अष्टम अंग अनिन्हव धारै, ते अष्टम भूमी जु निहारै॥ १०७॥
जा गुरुके ढिग तत्त्वविज्ञाना, पायौ अद्भुत रूप निधाना।
ता गुरुकौ नहिं नाम छिपावै, वारंवार महागुण गावै॥ १०८॥
सो कहिये जु अनिन्हव अंगा, ज्ञानस्वरूप अनूप अभंगा।
सम्यकज्ञान तनूं आराधन, ज्ञानिनकौं करनूं शिवसाधन॥ १०९॥
दरशनमोह रहित जो ज्ञानी, तत्त्वभावना दृढ ठहरानी।
जे हि जथारथ जानै भावा, ते चारित्र धरै निरदावा॥ ११०॥
विना ज्ञान नहिं चारित सोई, विना ज्ञान मनमथ मन मोहै।
तातैं ज्ञान पाछे जु चरित्रा, भाख्यौ जिनवर परम पवित्रा॥ १११॥
सर्व पापमारग परिहारा, सकल कषायरहित अविकारा।
निर्मल उदासीनता रूपा, आतमभाव सु चरन अनूपा॥ ११२॥
सो चारित्र दोय विधि भाई, मुनि-श्रावक व्रत प्रगट कराई।
मुनिकौ चारित सर्व जु त्यागा, पापरीतिके पंथ न लागा॥ ११३॥
ताके तेरह भेद वखानै, जिनवानी अनुसार प्रवानै।
पंच महाव्रत पंच जु समिती, तीन गुपतिके धारक सुजती॥ ११४॥
चउविधि जंगम पंचम थावर, निश्चयनय करि सब हि बराबर।
तिन सर्वनिकी रक्षा करिवौ, सो पहलो सु महाव्रत धरिवौ॥ ११५॥
संतत सत्य वचनकौ कहिवौ, अथवा मौनव्रतकौं गहिवौ।
मृषावाद बोलै नहिं कोई, दूजौ महाव्रत है सोई॥ ११६॥
कौडी आदि रतन परजंता, घटि अधटित तसु भेद अनंता।
दत्त अदत्त न परसै कोई, तीजौ महाव्रत है सोई॥ ११७॥

सब ग्रंथनिमैं त्रेपन-किरिया, इन करि, इन विन भवबन फिरिया।
जो ए त्रेपन किरिया धारै, सो भवि अपनो कारिज सारै ॥ १३३ ॥
सुरग मुकति दाता ए किरिया, जिनवानी सुनि जिनि ए धरिया।
तिन पाई निज परणति शुद्धा, ज्ञानस्वरूपा अति मतिवुद्धा ॥ १३४ ॥
हैं अनादि सिद्धा ए सर्वा, ए किरिया धरिवौ तजि गर्वा।
ठौर ठौर इनकौ जस भाई, ए किरिया गावै जिनराई ॥ १३५ ॥
गणधर गावैं मुनिवर गावैं, देवभाषमैं शवद सुनावैं।
पंचमकाल माहिं सुरभाषा, विरला समझै जिनमत साखा ॥ १३६ ॥
तातैं यह नरभाषा कीनी, सुरभाषा अनुसारै लीनी।
जो नरनारि पढ़ैं मनलाई, सो सुख पावैं अति अधिकाई ॥ १३६ ॥
संवत सत्रासै पच्याण्णव, भादव सुदि बारस तिथि जाणव।
मंगलवार उदैपुर माहैं, पूरन कीनी संसै नाहैं ॥ १३७ ॥
आनंद-सुत जयसुतकौ मंत्री, जयकौ अनुचर जाहि कहै।
सो दौलत जिनदासनि दासा, जिनमारगकी शरण गहै ॥ २१३८ ॥

इति।

सब ग्रंथनिमें त्रेपन किरिया, इन करि, इन विन भववन फिरिया ।
जो ए त्रेपन किरिया धारै, सो भवि अपनो कारिज सारै ॥ १३३ ॥
सुरग मुकति दाता ए किरिया, जिनवानी सुनि जिनि ए धरिया ।
तिन पाई निज परणति शुद्धा, ज्ञानस्वरूपा अति प्रतिबुद्धा ॥ १३४ ॥
हैं अनादि सिद्धा ए सर्वा, ए किरिया धरिवौ तजि गर्वा ।
ठौर ठौर इनकौ जस भाई, ए किरिया गावै जिनराई ॥ १३५ ॥
गणधर गावें मुनिवर गावें, देवभाषमें शवद सुनावें ।
पंचमकाल माहिं सुरभाषा, विरला समझै जिनमत साखा ॥ १३६ ॥
तातैं यह नरभाषा कीनी, सुरभाषा अनुसारै लीनी ।
जो नरनारि पढ़ै मनलाई, सो सुख पावैं अति अधिकाई ॥ १३६ ॥
संवत सत्रासै पच्याण्णव, भादव सुदि बारस तिथि जाणव ।
मंगलवार उदैपुर माहैं, पूरन कीनी संसै नाहैं ॥ १३७ ॥
आनंद-सुत जयसुतकौ मंत्री, जयकौ अनुचर जाहि कहै ।
सो दौलत जिनदासनि दासा, जिनमारगकी शरण गहै ॥ २१३८ ॥

इति ।

सब ग्रंथनिमैं त्रेपन-किरिया, इन करि, इन बिन भववन-फिरिया।
जो ए त्रेपन किरिया धारै, सो भवि अपनो कारिज सारै ॥ १३३ ॥
सुरग मुकति दाता ए किरिया, जिनवानी सुनि जिनि ए धरिया।
तिन पाई निज परणति शुद्धा, ज्ञानस्वरूपा अति मतिबुद्धा ॥ १३४ ॥
हैं अनादि सिद्धा ए सर्वा, ए किरिया धरिवौ तजि गर्वा।
ठौर ठौर इनकौ जस भाई, ए किरिया गावै जिनराई ॥ १३५ ॥
गणधर गावैं मुनिवर गावैं, देवभाषमैं शबद सुनावैं।
पंचमकाल माहिं सुरभाषा, विरला समझै जिनमत साखा ॥ १३६ ॥
तातैं यह नरभाषा कीनी, सुरभाषा अनुसारे लीनी।
जो नरनारि पढ़ैं मनलाई, सो सुख पावैं अति अधिकाई ॥ १३६ ॥
संवत सत्रासै पच्याणव, भादव सुदि बारस तिथि जाणव।
मंगलवार उदैपुर माहैं, पूरन कीनी संसै नाहैं ॥ १३७ ॥
आनंद-सुत जयसुतकौ मंत्री, जयकौ अनुचर जाहि कहै।
सो दौलत जिनदासनि दासा, जिनमारगकी शरण गहै ॥ २१३८ ॥

इति।